वैज्ञानिक पशुपालन व चिकित्सा

संकलनकर्ता

श्री चन्द्रनाथ मिश्र, बी० ए०

('भारतीय कृषि-विज्ञान' के लेखक)

संपादक-मण्डल

डा० ज़हूर अहमद खाँ

(भूतपूर्व सहायक वेटेरिनरी सर्जन)

कविराज कृष्णकुमार अवस्थी

आयुर्वेदाचार्य, बी० आई० एम० एस०

डा० शिवकुमार शुक्ल, डी० एम० एस०

प्रोफेसर नेशनल होम्योपैथिक कालेज (लखनऊ)

प्रकाशक

श्री प्रभाकर साहित्यालोक

रानीकटरा लखनऊ

प्राप्ति-स्थान—
श्री प्रभाकर साहित्यालोक
२३, श्रीराम रोड, लखनऊ

तीन रुपया

मुद्रक
श्रीचंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु
समाज-सेवा प्रेस, सआदतगंज,
लखनऊ

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

विषय-प्रवेश

पशुपालन की महत्ता, आवश्यकता और उपयोगिता पर आज के जमाने में कोई दो रायें नहीं हो सकतीं। अगर हम जरा अपनी कल्पनाशक्ति के सहारे आज से लाखों बरस पहले की दुनिया तथा उसमें बसने और रहनेवाले जीवों की कल्पना करें, साथ ही पशु व मनुष्य की प्रथम मित्रता का अनुमान करें तो आज के युग में वह सब बहुत विचित्र प्रतीत होगा।

विश्व-विकास की कहानी खोजनेवालों के अनुसार जब जमीन पर के जंगल किसी भयानक दावानल से भस्म हो गये और जंगलों का स्थान सैकड़ों मील लम्बे मैदानों ने ले लिया तब वृक्षों की शाखाओं पर विचरनेवाले वनमानुषों को आहार की खोज में धरती पर उतरने को विवश होना पड़ा। एक नई जिन्दगी शुरू हुई। अपनी जरूरतों के अनुसार उन वनमानुषों ने अपने स्वभाव व अपने शरीर की बनावट बदली। हजारों-लाखों साल उस परिवर्तन में लगे होंगे। प्रकृति से उस जमाने के जंगली मानव का संघर्ष कितना कठिन रहा होगा! धीरे-धीरे हजारों बरस संघर्ष करके मनुष्य ने पत्थरों के औजार बनाना, आग जलाना, उन भोंडे औजारों से शिकार करना सीखा। सबसे बड़ी चीज जो उस जमाने के इंसान ने अपने में पैदा की, वह था गिरोह बनाकर रहना। एक कुल का पारिवारिक जीवन अस्तित्व में आया। उस कुल के भरण-पोषण और सुरक्षा की जिम्मेदारी का भी ज्ञान उसे उसी समय आया होगा। अभी तक धरती पर खेती करके अन्न पैदा करना इंसान ने नहीं सीखा था। अपनी भूख-प्यास मिटाने के लिये, सर्दी से शरीर की रक्षा के लिये उसे अपने शिकार द्वारा मारे गये पशु व खाल का उपयोग करना आता था। ऐसे ही समय में दुधारू पशुओं के दूध, सवारी के लिये घोड़ा और सुरक्षा व पहरेदारी के लिये कुत्ता हर गिरोह के आवश्यक अंग बने होंगे। वेदों के अनुसार कुत्ता मनुष्य का प्रथम पशु-मित्र है। मनुष्य ने पशुओं को पालना और उन्हें प्यार करना सीखा।

शुरू में मांस की आवश्यकता होने पर पालतू पशुओं को मार

कर उनका मांस खाने के काम आ जाता था। किन्तु ज्यों-ज्यों मनुष्य का विकास हुआ, उसकी भावनायें बदलीं, पारिवारिक मोह पैदा हुआ, त्यों-त्यों नित्य उपयोगी और पालतू पशु अवध्य समझे जाने लगे। उनको मारने का निषेध हुआ। 'जियो और जीने दो' के मानवीय दर्शन का उदय हुआ। झुण्ड के झुण्ड पशु पाले जाने लगे। उनके लिये बड़ी-बड़ी शालाओं का निर्माण हुआ। पशुओं की उन्नति व विकास, उनके स्वास्थ्य व रोगनिवारण पर खोजें हुईं। खेती का युग शुरू होने पर बड़ी-बड़ी बस्तियाँ आबाद हुयीं। सभ्य मनुष्य और पालतू पशु एक परिवार के अभिन्न अंग हो गये।

अनुचित न होगा यदि हजारों बरस पहले के भारतवर्ष की ओर भी एक निगाह डाल ली जाय। किसी ज़माने के आर्यावर्त और आज के भारत में कितना अन्तर है, अनुमान करना कठिन है। फिर भी इतना तो सत्य ही है कि पशु-पालन और कृषि का उद्योग भारतीय जीवन के उतने ही आवश्यक अंग आज भी हैं, जितने उस प्रारम्भिक युग में रहे होंगे। राजे-महाराजे, ऋषि-मुनि और साधारण गृहस्थ सभी अधिक से अधिक संख्या में गाय-बैल, घोड़े, भेड़-बकरी, हाथी-ऊँट आदि पशुओं को पालते थे। इतना ही नहीं उन पशुओं के रख-रखाव, उनकी उन्नति व चिकित्सा के विशेषज्ञ राज्य से प्रश्रय पाते थे। पशु-धन से किसी की सम्पत्ति का मूल्यांकन होता था। अनेक पशुओं क, उनकी उपादेयता के कारण, पूजा तक होने लगी।

फिर समय बदला। विदेशियों के आक्रमण के कारण और कुछ समय और बीतने पर आई आंशिक गुलामी के कारण देश की अर्थव्यवस्था चौपट होने लगी, स्वाभाविक था कि समाज का हर अंग कुछ न्यूनाधिक उपेक्षित-सा हो गया। पशुधन भी विनष्ट होने लगा। स्थिति यहाँ तक दयनीय हो गयी कि जिस देश में पशुधन सबसे बड़ी सम्पत्ति थी, दूध, घी की प्रचुरता जिस भूमि की विशेषता थी, वहाँ उन वस्तुओं का अकाल-सा हो गया। यह वस्तुयें कुछ धनी-मानी श्रीमानों के उपभोग की सामग्री मात्र रह गयीं।

अंग्रेजी-साम्राज्य के शासन-काल में पशुधन का बड़ी तीव्रगति से ह्रास हुआ। मांस व चमड़ा हड्डी आदि के व्यापार के लोभ में करोड़ों उपयोगी और युवा पशुओं का वध सौ वर्ष तक निरंतर चलता रहा। फलस्वरूप देश के पशुओं की उत्तम नस्लें समाप्तप्राय हो गयीं। ठाँठ, दुर्बल और भारस्वरूप पशु ही बच गये।

आज भारतवर्ष सार्वभौम सत्तासम्पन्न स्वतन्त्र देश है। तबाह हुये देश का निर्माण करना है। निर्माण की प्रगति में पशुधन की वृद्धि, उन्नति और उसका संरक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत पुस्तक में पशु-पालन और पशु-चिकित्सा दो खण्ड हैं। राज्य की ओर से नित्य ही अनेक पशु-चिकित्सालयों, गर्भाधान केन्द्रों व पशु-शालाओं की स्थापना हो रही है। और उत्तम नस्लें तैयार करने के भगीरथ प्रयत्न हो रहे हैं। इस पुस्तक से जनसाधारण को पशुपालन के संबंध में पूरी जानकारी प्राप्त हो सकेगी और तत्काल, चिकित्सक के अभाव में, रोगों की चिकित्सा भी सुलभ हो सकेगी। चिकित्सा-प्रकरण में रोगों के कारणों व लक्षणों के साथ, आयुर्वेदीय, होम्योपैथिक तथा एलोपैथिक चिकित्सा-पद्धतियों के अनुभूत नुस्खे दिये हैं।

पुस्तक की उपयोगिता पशु-चिकित्सा विज्ञान के विद्यार्थियों के लिये भी उतनी ही है जितनी जनसाधारण के लिये। निस्संदेह पशु-पालन जहाँ आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद है वहाँ मनुष्य में सहज बुद्धि और मानवीय भावनाओं का परिचायक भी है। आदिमानव के प्रथम मित्र और सहयोगी के प्रति कर्तव्यपालन की दृष्टि से भी यही वाञ्छनीय है। केवल आहार के लिये, आर्थिक व्यवसाय के लिये या धार्मिक कृत्यों के लिये पशुओं का अज्ञानपूर्ण वध करनेवालों को लाखों वर्ष पूर्व के शाखाचारी हिंसक वनमानुष से अच्छी कोटि में नहीं रखा जा सकता। हमारा अभीष्ट पशुधन की अधिकतम वृद्धि व उन्नति है।

कृष्णकुमार अवस्थी
आयुर्वेदाचार्य, बी० आई० एम० एस०

श्री चन्द्रनाथ मिश्र

भारतीय कृषि विज्ञान के तीनो खण्डों, व
वैज्ञानिक पशुपालन व चिकित्सा
के संकलनकर्ता, तरुण एवं
यशस्वी पत्रकार व
साहित्यकार

मेवाती गाय
(काठियावाड़ी)

साहीवाल
गाय

हरियाना
गाय

हरियाना
साँड

मुर्रा
भैंसा

मुर्रा
भैंस

नीला
भैंसा

मेरिण्ड
दुम्बा

बुन्देलखण्डी भेड़

यमुनापारी बकरी

यमुनापारी बकरा

बारबरी बकरी

बारबरी बकरा

मिडिल ह्वाइट
यर्कशायर
सुअर

इंगलिश
थारो-ब्रीड
स्टैलियन

काठियावाड़ी
स्टैलियन (घोड़ा)

अरबी स्टैलियन
(घोड़ा)

भूटिया कुत्ता

वैज्ञानिक पशुपालन व चिकित्सा

प्रथम खण्ड

पशु-जातियाँ, उपयोग व विशेषतायें

प्रत्येक पशुपालक के लिये घरेलू पशुओं को मुख्य-मुख्य जातियों, तथा उनकी विशेषताओं का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। हम यहाँ गाय, भैंस, घोड़ा, भेंड़, बकरी, कुत्ता आदि सामान्य पशुओं की नस्लों का वर्णन करेंगे। पशुपालकों को चाहिए कि उन्हीं जातियों को पालें जो अधिक उपयोगी और लाभप्रद हैं।

गाय

गाय सदैव से ही अपनी उपयोगिता के कारण हमारे देश में पुजती आई है। वह हमें दूध देती है और उसके बछड़े अन्न। यह कहना अनुचित न होगा कि हमारे देश की ८० प्रतिशत कृषि बैलों पर ही निर्भर करती है। गायों की सभी जातियों को ६ व्यापक वर्गों में विभाजित किया जाता है--(१) मैसूरी, (२) काठियावाड़ी, (३) उत्तर भारतीय, (४) पंजाबी (साहीवाल), (५) धन्नी और (६) पहाड़ी। अब हम इनमें से प्रत्येक जाति पर प्रकाश डालेंगे।

मैसूरी—इसे 'अमृतहाल' के नाम से भी पुकारा जाता है। यह मैसूरी, मद्रास और बम्बई प्रदेश के दक्षिणी भाग में पाई जाती है। इसके सींग व सिर लम्बे, नथुने सँकरे, उन्नत ललाट, छोटी पीठ और पिछला भाग भारी व सुदृढ़ होता है। स्थान-भेद से मैसूरी की अन्य उपजातियाँ भी पायी जाती हैं। सामान्यतया इस जाति की गायें कम दूध देनेवाली होती हैं।

काठियावाड़ी—इसके अनेक रूपान्तर पश्चिमी भारत के बहुत बड़े भूभाग में कच्छ से हैदराबाद (सिंध) और राजपूताने से उत्तरप्रदेश की सीमा तक पाये जाते हैं। इसका सिर उभरा हुआ होता है और लम्बेलटकते हुएकान व सींग एक अलग विशेषता रखते हैं। सींगों का आकार छोटा और रुख पीछे की ओर मुड़ा हुआ होता है। इसकी उपजातियों में राजपूताने की गीर नस्ल, हैदराबाद की देवानी, बम्बई की डांगी और भरतपुर आदि की मेवाती (कोसी) और नर्मदा की नीमड़ी नस्लें आती हैं। इनमें मेवाती (कोसी) और नीमड़ी नस्लें अच्छी मानी जाती हैं। यह मैसूरी गायों से अधिक बड़ी होती हैं और दूध भी अधिक देती हैं। यह गायें प्रति दिन ५ सेर के औसत से दूध देती हैं।

उत्तर भारतीय—यह जाति प्राय: समस्त भारत भर में पाई जाती है। इसके भी दो अवान्तर भेद देखने से आते हैं—(१) उत्तर भारतीय और (२) उत्तर एवं मध्य भारतीय। उत्तर भारतीय नस्ल की गाय का मुँह चौड़ा और सींग मुड़े हुये होते हैं। इसका रंग सफेद और कुछ-कुछ भूरा होता है। इसकी अनेक उपजातियों में बम्बई के प्रदेश में पाई जानेवाली कांकरेज नस्ल भारतवर्ष की सर्वश्रेष्ठ नस्ल मानी जाती है। उत्तर प्रदेश की पवार, सिंध की थार्परकर, राजपूताने की थापर्कर, सीतामढ़ी की बचौर आदि नस्लें उत्तर भारतीय जाति की ही उपजातियाँ हैं। उत्तर एवं मध्य-भारतीय जाति की गौ सँकरे मुँह और छोटी सींगों वाली होती है। इसका रंग सफेद होता है। सिंध से बलूचिस्तान तक पाई जानेवाली भागनारी नस्ल, वर्धा की गावलाव, पंजाब की हरियाना और हाँसी हिसार तथा राजपूताने की राठ नस्लें इसी में हैं। पंजाब की हरियाना जाति उत्तरप्रदेश और भरतपुर आदि में अधिक पाई जाती है। यह एक उन्नतिशील नस्ल है। हमारी सरकार इस नस्ल की उन्नति व प्रसार पर बहुत जोर देरही है। इनमें दूध का औसत ५ सेर होता है और मक्खन ३-४ प्रतिशत पड़ता है।

पंजाबी (साहीवाल)---इसमें अफगानिस्तान और उत्तर भारत के

रक्त का मिश्रण पाया जाता है। इसका रंग लाल, काला और खैरा भी होता है। इसके सींग नीचे की ओर झुके हुए होते हैं। कद सिन्धी से बड़ा और हरियाना से छोटा होता है। दूध का औसत ६ सेर प्रतिदिन का पड़ता है। घी लगभग ५ प्रतिशत पाया जाता है। यह गाय हमारे देश की सर्वाधिक दुधार गाय है। पशुपालकों को इसे अन्य जातियों के समक्ष प्राथमिकता देनी चाहिए।

सीमाप्रान्त की धन्नी जाति—यह उत्तरपश्चिमी सीमाप्रान्त में पाई जानेवाली एक स्वतन्त्र जाति है। इसमें दूध की मात्रा अधिक नहीं होती।

पहाड़ी—यह मुख्यतया हिमालय की पर्वतश्रेणियों में पाई जाती है। इसका सिर देह के अनुपात से कुछ छोटा होता है। खाल का रंग काला या एक प्रकार से लाल बादामी-सा होता है। दार्जिलिंग की सीरी और बलूचिस्तान व सिन्ध की सीरी जातियाँ इसी नस्ल की हैं। दूध देने, पहाड़ों पर काम करने और हल तथा बोझा ढोने के काम में इस जाति के पशु बहुत उपयोगी होते हैं।

भैंस

गाय के समान भैंस भी हमारे देश में एक उपयोगी पशु है। भैंस से दूध मिलता है और भैंसे कृषि के काम आते हैं। पानी वाले स्थानों में तो भैंसे बलों से अधिक उपयोगी प्रमाणित होते हैं। भैंस एक जल-प्रिय पशु है। गाय के समान इसकी भी कई जातियाँ होती हैं जिनमें से मुर्रा, भदावरी, तराई की भैंसें और नीली जातियाँ अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके पालने में अधिक लाभ भी है।

मुर्रा—यह पूर्वी पंजाब की एक नस्ल है किन्तु सम्पूर्ण पंजाब, उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों और सिन्ध में दूध और घी के लिए अधिक पाली जाती हैं। हमारे देश की सभी जातियों में यह दूध और घी के उत्पादन के

लिये सर्वाधिक क्षमता रखती है। यह साधारणतया काली होती है और प्राय: किसी-किसी के हल्के भूरे रोयें भी होते हैं। प्राय: चेहरे, पाँवों और पूँछपर सफेद दाग होते हैं। सींग मुड़े हुए और आकार भारी होता है। इसका भार १२०० से १५०१ पौंड तक होता है। दूध का औसत ८ सेर प्रतिदिन और ७ या ८ प्रतिशत घी होता है। हमारे देश के सभी भागों में इस नस्ल का प्रचार आवश्यक है।

भदावरी—यह आगरा जिले के अन्तर्गत भदावरी राज्य की नस्ल है। यह इटावा और मध्यप्रदेश के कुछ जिलों में पाई जाती है। यह यमुना और चम्बल के तटवर्ती प्रदेशों में यत्रतत्र पाई जाती है। यह भैंसे मध्यमक़दकी WedgeSharped(गोमुखी आकृतिवाली) होती हैं। इनका रंग ताम्र होता है। रोयें जड़ों के निकट काले और ऊपर कत्थईपन लियेहुये होते हैं। किसी किसी के रोयें तो बिलकुल भूरे रंग के होते हैं। सामान्यतया चारो ओर पैर कुछ सफेद व भूरे होते हैं। सिर अन्य जातियों की अपेक्षा कुछ छोटा होता है। सींग लम्बे और पीछे की ओर होते हैं। मत्था कुछ चौड़ा और मध्य में कुछ गहरा होता है। चेहरे पर सफेद दाग प्राय: नहीं होते। मादा की आँखें चमकीली होती हैं। उसकी गर्दन मध्यम आकार की, सुव्यवस्थित, पतली और नर की अपेक्षा अधिक मांसल और मोटी होती है। सीना भली भाँति विकसित होता है। पेट छोटा होता है और काले खुरों वाले छोटे और चुस्त पैरों के साथ भलीभाँति विकसित होती है। पूँछ लम्बी और पतली होती है। दूध का औसत प्रतिदिन ५ सेर पड़ता है किन्तु घी ८-१० प्रतिशत से भी अधिक पड़ता है। इस प्रकार इसके दूध का घी तैयार करना अधिक लाभप्रद है। इस नस्ल के भैंसे मुर्रा आदि से अधिक गर्मी सहन कर सकते हैं। मुर्रा और भदावरी के मिश्रण (दोगली) से घी और दूध दोनो ही अधिक प्राप्त होते हैं।

तराई—यह जाति तराई के क्षेत्रों में अधिक पाई जाती है। इसकी उन्नति की ओर अभी ध्यान नहीं दिया गया है, साधारणत: यह चराई

पर ही रहती हैं। इनके सींग अधिकतर लम्बे, चौड़े, पीछे की ओर मुड़े हुये होते हैं। पैर छोटे किन्तु मजबूत होते हैं। यह काले और भूरे दोनो ही रंगों की होती हैं।आँखें अपेक्षाकृत छोटी और कान बड़े होते हैं। किसी-किसी के मत्थे पर सफेद टीका भी होता है। इस जाति की भैंसें अधिकतर २--३ सेर दूध प्रतिदिन देती हैं। इस जाति के भैंसे मंझोले और मजबूत होते हैं। इस जाति की भैंस और भैंसे वहाँ के वातावरण के प्रभाव से मच्छर और मक्खियों के काटने को और तराई की जलवायु को भली भाँति सहन कर सकते हैं।।

नीली—इस जाति की वंशभूमि पंजाब ही है। ये अधिकतर मुर्रा के इलाके के पश्चिम में विशेषकर रावी के पश्चिमी भाग में पायी जाती हैं; परन्तु इनका कद और वजन मुर्रा से अधिक होता है। इनका माथा सुडौल और मुर्रा से अधिक उन्नत होता है। माथे पर अधिकतर सफेद टीका होता है। रंग भूरा या काला होता है किन्तु काले पशु की पूँछ और पैर भूरे होते हैं। यह मुर्रा से अधिक दुधार होती है और घी का औसत भी अधिक पड़ता है। इस जाति की भैंसें १० सेर १२ सेर तक दूध देती हैं। घी की मात्रा दूध की मात्रा के १/१० से १/१२ भाग तक पाई जाती है। इस जाति के भैंसे बलवान और मजबूत होते हैं।

भेड़

भेड़ से हमें ऊन, दुग्ध, मांस, खाल और खादें प्राप्त होती हैं। ऊन के व्यापार में बड़ा लाभ होता है। दुग्ध और मांस के साथ ही इसकी खालों का व्यापार भी कम लाभप्रद नहीं है। इसकी लेंड़ी की खाद कृषि के लिए बड़ी उपयोगी होती है। भेड़ पानी अधिक पीती है। गर्मियों में तीन और जाड़े में दो बार पानी पिलाना चाहिये। बाड़े में एक बड़ी चरही में पानी भरा रहे जिससे वे प्यासी होने पर पानी पी सकें। एक भेड़ एक दिन में ५ से ७ सेर तक पानी पीती है। जिन भेड़ों को कम चलना पड़ता है

उनके खुर बढ़ आते हैं। वर्षा में जब यह नरम पड़ जायँ इन्हें किसी नाल-बंद से कटवा दें। रान के बाल भी काट देने चाहिये जिससे दस्त होनेपर उनका शरीर गंदा न रहे। गर्मी में इनके मुँह प्रात: पोटाश से धो देना चाहिये क्योंकि इनकी नाक पर एक प्रकार की मक्खी अन्डे देती है। भेड़ों की आँतों और मेदे में एक प्रकार के कीड़े पड़ जाया करते हैं। अतएव इन्हें कीड़े मारने की दवा हर छठे माह दे देना चाहिये। किलोनो, जूँ और खारिश से बचाने के इन्हें 'कूपर्स डिप' के औषधि-घोल में अवश्य नहला दें। हमारे देश में भेड़ों की मुख्यतया कई जातियाँ पाई जाती हैं। यहाँ इन पर संक्षेप में प्रकाश डाला जायगा।

बीकानेरी---यह नस्ल रोहतक, गुड़गाँव, पटियाला, हिसार, भागलपुर, फिरोजपुर और लुधियाना में पाई जाती है। यह प्रकृति से ही १४ इंच वर्षा वाले स्थान में रह सकती हैं। नर का भार १०० पौण्ड तक और मादा का ८० पौण्ड तक होता है। नर से ३-३॥ सेर और मादा से १।-१॥ सेर तक ऊन मिलती है। मुँह का रंग लाल, काला और सफेद होता है। अधिकतर नर के मुँह में धब्बे पाये जाते हैं। इनकी ऊन खुर-खुरी होती है। इनकी ऊन से चटाई, कम्बल और दरी आदि बनती हैं। इनका सिर लम्बा होता है। नर की नाक कुछ ऊँची होती है। यह थोड़े दिनों में ही खिला-पिलाकर मोटी बनाई जा सकती है।

लोही---यह पंजाब की अच्छी जाति की भेड़ों में है। विशेष कर मुल्तान, लायलपुर, झंग, डेरा गाज़ीखाँ और शाहपुर के जिलों में पाई जाती है। इन्हें खाली खेतों में चराते हैं। घास, झाड़ी और खर-पतवार खिलाते हैं।

बिलारी---इसकी दुम पतली होती है। यह नस्ल मद्रास के बिलारी प्रान्त में कालिका-काइल आयर में भली प्रकार से पाली जाती है। यह मिश्र (दोगली) जाति है। इसका रंग प्राय: सफेद और मुँह काले और

लाल होते हैं। मादा के सींग नहीं होते, नर के सींग गरारीदार होते हैं।

दुम्बा—यह नस्ल अफगानिस्तान और सीमाप्रान्त के मध्य की जगहों में पाई जाती है। इसकी दुम स्थूल होती है जिसमें पाँच-सात सेर चर्बी पाई जाती है। इसका रंग काला या भूरा होता है। इसकी नाक उन्नत, शरीर गोल और ठोस होता है। सींग गोल और पीछे की ओर मुड़े हुये होते हैं। बच्चे की ऊन घुँघराली होती है।

गद्दी—इसे बहादुरवा भी कहते हैं। सरदी में यह मैदान में आ जाती है। गर्मी में पुनः पहाड़ों पर ले जाते हैं। कान व दुम छोटी, रंग सफेद, मुँह पर लाल काले धब्बे, ऊन अच्छी ५ इंच तक लम्बी होती है। इसकी ऊन साल में तीन बार जून, अक्टूबर और फरवरी में काटी जाती है।

बुन्देलखण्डी—यह बीकानेरी के समान है किंतु कद में छोटी होती है और इसका रूखा और मुलायम ऊन कम्बल बनाने के काम आता है।

मैसूरी—इसका रंग हल्के से गहरा भूरा या काला होता है। नर भेड़ २५ इंच और मादा २३ इंच ऊँची होती है। भार ४० से ६० पौंड होता है। ऊन ३ से ४ पौंड। सींग बड़े और घुमावदार होते हैं।

दक्षिणी—यह हैदराबाद दक्षिण की नस्ल है। इसे 'सूरती' भेड़ भी कहते हैं। इसका कद छोटा और रंग काला होता है। सर पर सफेद दाग होता है। ऊन अच्छी रहती है।

मद्रासी—मद्रासी भेड़ की ऊन अच्छी होती है। ऊन ९ औंस प्रति भेड़ का औसत पड़ता है।

देशी—उपयुक्त भेड़ों के अतिरिक्त देशी भेड़ भी हमारे यहाँ

अधिक संख्या में पाई जाती है। यह साधारण कद की होती है। इसके बाल बहुत अच्छे नहीं होते। यह उन्नत जाति नहीं है।

बकरी

बकरी निर्धन की गाय है। भेड़ के समान ही इससे भी दूध, मांस, खाल और खाद प्राप्त होती है। इसका दूध रोगियों के लिये बड़ा उपयोगी होता है और इसे कम व्यय में पाला भी जा सकता है। इसके क्षयरोग अन्य पशुओं की अपेक्षा कम होता है, अतएव क्षय के रोगियों के लिये इसका दूध अधिक गुणकारी होता है। बालों का व्यापार भी कम लाभप्रद नहीं है।

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद ने भारतीय बकरियों की वर्तमान जातियों के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त की है। उसके अनुसार हमारे देश में इनकी मुख्य सात जातियाँ पाई जाती हैं; जो निम्न हैं—

यमुनापारी—यमुनापारी हमारे देश की सब से बड़ी, सुन्दर तथा लम्बे कानोंवाली बकरियाँ हैं। इनका घर यमुना, गंगा तथा चम्बल नदियों के प्रदेश में है। यह इनके नाम से ही प्रगट हो जाता है। अपने शुद्ध रूप में संभवत: यह उत्तर प्रदेश के इटावा जिले में पाई जाती है जहाँ पर राजकीय पशु-विभाग द्वारा इस जाति का नियमित विकास किया जा रहा है।

यह बकरियाँ दूध तथा मांस दोनो के हेतु उपयोगी हैं। एक प्रौढ़ बकरे का भार २०० पौण्ड से भी अधिक हो सकता है। सफेद और उन पर कत्थई रंग के धब्बोंवाली बकरियों को अधिक पसंद किया जाता है। उनके सींग छोटे तथा चपटे, कान लम्बे-चौड़े तथा झूलते हुये होते हैं। कान प्राय: १० से १२ इंच तक लम्बे तथा अपनी लम्बी धुरी पर कुछ पीछे की ओर को झुके हुये होते हैं। उनका अयन (स्तन भाग) बहुत बड़ा और थन लम्बे और बड़े होते हैं। जाँघों के मध्य रोयों की मात्रा अत्यधिक

होती है। नाक से पूँछ के मूल स्थान तक की लम्बाई ५० से ५४ इंच तक, खुरों से लेकर कंधों के ऊपर तक की ऊँचाई ३६ से ४० इंच तक तथा नरों का भार १५० से २०० पौण्ड तक होता है। वे अत्यधिक दृढ़ और चुस्त होते हैं और इसीलिये गाँवों की विषम परिस्थितियों के लिये उपयोगी हैं। दूध का औसत लगभग ४ सेर प्रतिदिन पड़ता है। उनके दूध में लगभग ५.२ से लेकर ७.८ प्रतिशत तक चिकनाई होती है। इस जाति की बकरियाँ जल्दी-जल्दी नहीं ब्यातीं; यह वर्ष में केवल एक ही बार बच्चा देती हैं और एक बार में केवल एक ही बच्चा। इनमें गर्भ धारण करने का समय लगभग ५ माह तक चलता है। साधारणतः वे जुलाई से अक्तूबर तक के समय में गर्भ धारण करती हैं और नवम्बर से फरवरी तक के समय में ब्याती हैं।

बीटल—बीटल बकरियाँ पंजाब में (विशेषतः स्यालकोट, झेलम और गुरदासपुर जिलों में पाई जाती हैं। यमुना पारी बकरियों की भाँति उनके कान लम्बे तथा नाक रोमन प्रकार की होती है, जो कि इनके एक ही नस्ल होने के साक्षी हैं। सींग जो समानान्तर चलते हैं बाहर तथा पीछे की ओर थोड़े-से घूमे होते हैं। साधारणतया बकरों के सुन्दर लम्बी दाढ़ी होती है परन्तु बकरियों के नहीं होती। इस जाति का रंग साधारण तौर पर लाल या कत्थई होता है और प्रायः सफेद रंग पर बहुत अधिक संख्या में अनेक चित्तियाँ या धब्बे होते हैं। गुजराँवाला की बकरियों के रोयें बहुत अधिक होते हैं। औसत लम्बाई ५० इंच, कमर की ऊँचाई ३५ इंच तथा शरीर का भार १७० पौण्ड होता है, तथा बकरियों की औसत लम्बाई ४२ इंच, ऊँचाई ३३ इंच तथा भार १०० पौण्ड होता है।

साधारणतः यह बकरी प्रतिदिन दो सेर के लगभग दूध देती है किंतु एक दिन में ४॥ सेर तक दूध प्राप्त हुआ है। यह बकरियाँ वर्ष में लगभग ५ माह दूध नहीं देतीं। दूध में चिकनाई की मात्रा लगभग ४.५ प्रतिशत होती है। यह बकरी लगभग २२ माह की होने पर पहली बार बच्चा

देती है। वे साधारणत: वर्ष में एक बार ही ब्याती हैं और एक ब्यात में एक, दो तथा कभी-कभी ३ बच्चों तक को जन्म देती हैं। गर्भधारण काल ५ माह होता है।

कामोरी—कामोरी जाति का प्राकृतिक निवासस्थान सिन्ध प्रदेश का भीतरी भाग व सिंध नदी के तटों के निकट है। वहाँ पर वे 'कामो' नामक बेल पर अपना निर्वाह करती हैं। अच्छी दुधार बकरियाँ नदी निकटवर्ती प्रदेश में मानकन्द से काटरी और क्षुरक आदि तक पाई जाती हैं। इस जाति की बकरियों के कान लम्बे-लम्बे होते हैं परन्तु ये उपर्युक्त दोनों जातियों की बकरियों से भिन्न होती हैं। इनके सींग घुमावदार तथा ऊपर को उठे हुए होते हैं। यह बकरियाँ उभयगुणी होती हैं। इनकी आकृति, बनावट तथा हड्डियाँ अच्छी होती हैं और स्तनभाग सुविकसित तथा थन लम्बे होते हैं। यह अत्यंत दृढ़ होती हैं। इनका रंग प्राय: बादामी और भूरा मिला हुआ होता है जिसमें भूरे की प्रधानता होती है।

यदि इनको ठीक से खिलाया-पिलाया जाय तो यह प्रतिदिन २ सेर से ४ सेर तक दूध दे सकती हैं। कहीं-कहीं पर अच्छी चराई करने से कोई-कोई बकरी ६ सेर प्रतिदिन तक दूध देती पाई गई हैं। इन बकरियों से वर्ष में कम से कम १ बार बालों की भी अच्छी प्राप्ति होती है। यह बकरियाँ प्राय: १ बार में दो बच्चे देती हैं और कोई-कोई तो एक बार में तीन बच्चे तक देती देखी गई हैं।

बारबरी—यह बकरियाँ नील नदी के तटों पर मारीशस, मैडागास्कर और बोरबन में पाई जाती हैं। भारतवर्ष में यह उत्तर प्रदेश में (अलीगढ़ इनका केन्द्र है), दिल्ली प्रान्त में तथा पंजाब में गुड़गाँव और करनाल जिलों में पायी जाती हैं। यह बकरियाँ छोटे आकार की होती हैं और इनके शरीर पर छोटे-छोटे बाल होते हैं। इनके कान छोटे-छोटे तथा प्राय: नोकदार होते हैं और चेहरे की रेखा भी सीधी होती है। इनका रंग

विभिन्न प्रकार का होता है किन्तु अधिकतर बकरियों का रंग सफेद होता है और उस पर लाल, बादामी रंग के चकत्ते होते हैं। इनकी टाँगें छोटी-छोटी और सुन्दर हड्डियों वाली होती हैं। इस जाति की बकरियाँ दुग्धशाला के पशु के रूप में अच्छी होती हैं। उनका स्तनभाग बड़ा और सुन्दर आकार वाला होता है। अपने आकार की तुलना में यह बकरियाँ बहुत अधिक दूध देती हैं। प्रतिदिन दूध उत्पत्ति का औसत लगभग १-२ सेर होता है किन्तु अधिक से अधिक ३ सेर दूध एक दिन में प्राप्त किया गया है। यह बहुत जल्दी ब्याती हैं और एक बार में प्रायः दो या तीन बच्चे देती हैं। यदि इच्छा हो तो इनसे वर्ष में दो बार बच्चे प्राप्त किये जा सकते हैं।

काश्मीरी—यह बकरियाँ काश्मीर और तिब्बत के पहाड़ी क्षेत्र में पायी जाती हैं। यह प्रायः नम जलवायु और मैदानी भाग में भली-भाँति नहीं फूलती-फलतीं। यह आकार में बड़ी होती हैं। इनका रंग सफेद, या काला और सफेद होता है। सिर सुन्दर तथा सींग लम्बे और मुड़े हुये तथा कान लम्बे होते हैं। शरीर पर सुन्दर रेशम जैसे लगभग ४-५ इंच लम्बे बाल होते हैं जिनके नीचे फर के समान अति सुन्दर 'अण्डरकोट' व्यापार-क्षेत्र में प्रसिद्ध पश्मीने का बना हुआ होता है। यह अण्डरकोट अक्टूबर से फरवरी तक उगता रहता है और बसंत ऋतु में इसे निकाल लिया जाता है। ८–१० दिन तक बकरियों के कंघी की जाती है और अण्डरकोट को एकत्र किया जाता है। लम्बे-लम्बे रेशमी बालों को छोड़ दिया जाता है जिन्हें बाद में काटा जाता है। प्रति बकरी से लगभग ३-४ औंस तक पश्मीना प्राप्त होता है। यह बकरियाँ अत्यन्त दृढ़ होती हैं और भयंकर सर्दी को भी सहन कर सकती हैं।

यह दूध उत्पन्न करने के लिये नहीं पाली जातीं। इनसे दूध-उत्पत्ति कम होती है। इन बकरियों के बाल सामान्यतः रस्सियाँ, नमदे आदि तैयार करने के काम में लाये जाते हैं। बालों का वार्षिक उत्पादन लगभग ४ पौंड प्रति बकरी होता है। पहाड़ी लोग इन बकरियों के चमड़ों को अधिकांशतः

एक स्थान से दूसरे स्थान तक अनाज ढोने के काम में लाये जानेवाले बोरों और थैलों को बनाने के काम में लाते हैं। पश्मीना प्रसिद्ध अंगूरी छाप शाल बनाने के काम में लाया जाता है। यह काश्मीर का एक बहुत बड़ा उद्योग है।

बलूची—बलूची जाति की बकरियाँ कलात राज्य में, मरी और बुगाती लोगों के प्रदेशों में तथा छागर जिले और खरन रियासत में पाई जाती हैं। ये बकरियाँ कुछ छोटे आकार की होती हैं। ये अधिकांशत: काली होती हैं परन्तु बादामी, भूरे और सफेद रंग भी इनमें देखने में आता है। इनके सींग छोटे-छोटे होते हैं। शरीर का पिछला भाग पेशियोंवाला तथा सुविकसित होता है जिसमें छोटी-सी और पतली पूछ होती है जो सदैव सीधी खड़ी रहती है। ये ऊँचे स्थानों में चढ़ाई करने में बहुत अच्छी और दृढ़ होती हैं तथा बहुत लम्बी यात्रा कर सकती हैं। इनसे दूध की प्राप्ति का औसत प्रतिदिन १ सेर है।

इन्हें वर्ष में एक बार कतरा जाता है और प्रति बकरी से लगभग २-३ पौंड बाल प्राप्त होते हैं।

कच्छी—यह बकरियाँ शुद्धरूप में कच्छ रियासत के धारवाड़ क्षेत्र और पूर्व में हैदराबाद में सभी स्थानों पर पाई जाती हैं। वे मध्यम आकार की, काले रंग की तथा लम्बे-लम्बे बालों वाली होती हैं। उनके सींग ऐंठ-दार होते हैं। कान मध्यम लम्बाई वाले और प्राय: सफेद या सफेद चित्तियों वाले होते हैं। उनके चेहरों पर भी सफेद चकत्ते पाये जाते हैं।

सुअर

सुअर का मांस, बाल, चर्बी आदि सभी वस्तुयें काफी महँगी बिकती हैं। इसके पालने में व्यय कम होता है और लाभ अधिक। हमारे देश में पाई जाने वाली सुअरों की जातियाँ निम्न हैं :—

जंगली सुअर—बचपन में इसका रंग हल्का भूरा होता है और बड़े होने के साथ-साथ वह भी गहरा होता जाता है। युवावस्था में वह गहरा भूरा हो जाता है। जैसे-जैसे इसकी आयु वृद्धापा की ओर बढ़ती जाती है इसके बाल सिर से सफेद होने लगते हैं। यह बहुत ही फुर्तीला होता है तथा छेड़ने पर यह हिंसक सिद्ध होता है।

पालतू सुअर---जंगली सुअर से थोड़ा भिन्न होता है। इसका थूथुन लम्बा, टाँगें और पसलियाँ छोटी होती हैं। इसका मांस अधिक अच्छा नहीं होता। इसके शरीर पर विदेशी जाति के सुअरों से अधिक और लम्बे बाल होते हैं। यह बाल अच्छे प्रकार के ब्रुश आदि बनाने के काम आते हैं। उत्तर प्रदेश के पशुपालन विभाग का सुअरों की उन्नति के सम्बन्ध में प्रमुख उद्देश्य देशी सुअरों को विदेशी (यार्क शायर मिडिल ह्वाइट) जाति के नर सुअरों से मेल कराके उन्नत कराना है। ये नर सुअर पशुपालन विभाग द्वारा १०) रु० मात्र पर प्राप्त किये जा सकते हैं।

मिडिल ह्वाइट यार्कशायर जाति के सुअर---इस जाति के सुअर प्रधानत: गोश्त के लिये बहुत उत्तम हैं। इनकी हड्डियाँ छोटी होती हैं अत: इनके शरीर से मांस अधिक निकलता है। इस जाति के सुअर मजबूत तथा मेहनती होते हैं तथा चराई बहुत पसंद करते हैं। अन्य जातियों के सुधार के हेतु इस जाति के नर सुअर बहुत अच्छे होते हैं। देशी जाति के सुअरों की उन्नति करने में इनकी बड़ी सहायता ली गई है। इस जाति के सुअरों पर काले धब्बे और इनकी सिकुड़ी खाल अच्छे नहीं समझे जाते।

नस्लकशी के हेतु मादा सुअर में सभी अच्छे गुणों का होना आवश्यक है। वह अच्छे वंश की तथा सीधी होनी चाहिये। डरपोक न होनी चाहिये। कम बच्चे उत्पन्न करने वाली मादा की अपेक्षा अधिक बच्चे उत्पन्न करनेवाली मादा की खुराक कुछ ही अधिक होती है, अत:

मादा अधिक बच्चे देनेवाली होनी चाहिये, इनसे मालिक को अधिक लाभ होता है। मादा सुअर की पीठ चौड़ी और मजबूत होनी चाहिये। उसके सभी पुट्ठे गठे हुये और बगलें गहरी और लम्बी होनी चाहिये। सीना विस्तृत होना चाहिये। सुअरी चिकनी और उम्दा बालों वाली होनी चाहिये। इनकी गर्भावस्था ३॥--४ माह होती है। इनके द्वारा अप्रैल, मई और जून महीनों में पैदा होनेवाले बच्चे अन्य महीनों में पैदा होने वाले बच्चों की अपेक्षा कमजोर होते हैं। अतः सुअरियों को उन महीनों में ही गाभिन कराया जाना चाहिये ताकि बच्चे उपरोक्त समय में न पैदा हों। प्रति ५० सुअरियों के हेतु एक नर सुअर अपेक्षित है।

कुत्ता

कुत्ता बड़ा स्वामिभक्त पशु है। इसे लोग घर की रखवाली, शिकार आदि के अतिरिक्त शौकिया भी पालते हैं। भारतीय तथा अन्य देशों में कुत्तों की अनेक नस्लें पाई जाती हैं जिनमें से भारत में पाली जानेवाली कुछ जातियाँ दी जाती हैं।

ग्रेहाउन्ड---अंग्रेजी ग्रेहाउन्ड का विचित्र प्रकार का लम्बा सर और चेहरा होता है। नाक पतली और जबड़े लम्बे होते हैं। इसीलिये यह शिकार के लिए उपयोगी है। इसमें रूसी, पर्शियन, आयरिश, हालैण्ड, टर्की तथा इटालियन जातियाँ भी होती हैं।

टेरियर (Terrier)—इसकी अंग्रेजी स्काट, डाँडी, स्काई, फाक्सटेरियर, बेलिंगडन, हैलीफाक्स, ब्लटेन तथा स्टाफ्टेरियन जातियाँ प्रसिद्ध हैं। अंग्रेजी टेरियर का भार ६ से १० पौंड तक होता है। चमड़ा चिकना गहरा भूरा होता है। सफेदी बिल्कुल नहीं होती। आँख पर भूरा दाग होता है। इसका पुट्ठा भूमि खोदने के लिए बड़ा दृढ़ होता है।

सिटर्स—(Setters) इसकी विशेषता यह है कि यह शिकार के हेतु अत्यन्त उपयोगी होता है। जहाँ शिकार-जन्तु होता है वहाँ यह रुक जाता है। आयरिश जाति अँग्रेजी से अधिक अच्छी होती है। यह प्रति आध घण्टे के बाद पानी में नहाये बिना गर्मी नहीं सहन कर सकता।

स्पेनियल (Spaniels)—इसकी तीन मुख्य किस्में हैं—स्प्रिंगर, काकर तथा ट्वाय स्पेनियल। शिकार आदि के लिये १२ पाउण्ड से अधिक भार का कुत्ता बेकार होता है। उसका चमड़ा मोटा होना चाहिये जिससे नमी सहन कर सके। नाक बड़ी न हो नहीं तो वह शिकार का पीछा नहीं कर सकता।

जापानी और चीनी नस्ल—यह छोटे-छोटे कुत्ते हैं जिनका भारत और अमेरिका में पर्याप्त आयात होता है। यह बड़ी शौक से पाले जाते हैं। यह स्त्रियों के विशेष प्रेम-भाजन होते है। रंग बहुत काला होता है।

भूटिया—यह भारतीय नस्ल है, जो पहाड़ों पर होती है। यह काफी बड़े और शिकार के लिये उपयोगी होते हैं। यह गर्मी नहीं सहन कर सकते।

घोड़ा

हमारे देश में घोड़ा सवारी और सामान ढोने के काम आता है। रेस और पोलो के खेलों में भी घोड़े काम में लाये जाते हैं। घोड़े तीन प्रकृति के होते हैं—(१) वायु, (२) कफ, (३) पित्त। वायुप्रधान प्रकृति के घोड़े को खुश्की अधिक मालूम पड़ती है, कड़वी वस्तु बड़े चाव से खाते हैं। उसके शरीर की नसें बिलकुल स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। वे उछलते-कूदते दिखाई पड़ते हैं। बलगमी प्रकृति के घोड़ों के रोयें नरम, चिकने व मुलायम होते हैं। यह चारा-दाना तो कम खाते हैं पर चलने में तेज होते हैं।

पित्तप्रकृति के होने पर यह खूब चंचल हो उठते हैं और चारा-दाना खाने में प्रसन्नता दिखाते हैं। शरीर में खूब ताजगी रहती है।

अन्य पशुओं के समान घोड़ों की भी देशी, मिश्रित (दोगले) तथा शर्मी आदि अनेक जातियाँ पाई जाती हैं। यहाँ उनकी कुछ उन्नतिशील जातियों का वर्णन किया जाता है, जिसमें काठियावाड़ी भारत की विशेष जाति है।

कठियावाड़ी—इस जाति के घोड़े कठियावाड़ प्रदेश में पाये जाते हैं। इनका रंग भूरा तथा कान घूमे हुए होने हैं। तेजसवारी के लिए यह सर्वोत्तम हैं।

थारो ब्रोड (Thorough Breed)—यह विदेशी नस्ल है। भारतीय सरकार इसकी नस्ल बढ़ाने पर विशेष जोर दे रही है। यह घोड़े सबसे सुन्दर और बड़े डील-डौल वाले होते हैं। सवारी के काम के लिए अच्छे होते हैं।

अरबी—यह अरब देश की नस्ल है। प्रसिद्ध है कि यह बड़ा सच्चा और वफादार पशु है। इसकी नस्ल को बढ़ाने का भी प्रयत्न हो रहा है। यह भी काफी बड़ा और प्रायः सफेद होता है।

भूटिया—यह पहाड़ी जाति है जो अल्मोड़ा और गढ़वाल आदि में पायी जाती है। इसके बाल अपेक्षाकृत बड़े और कद छोटा होता है। यह बड़ा मजबूत होता है, पहाड़ों पर बोझ ढोने और सवारी के काम के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

ऊँट

ऊँट एक रेगिस्तानी जीव है। राजपूताने के मरुस्थली प्रदेशों में सवारी का यह सर्वश्रेष्ठ साधन है। यह प्रायः सारे देश में सवारी, माल ढोने आदि के काम आता है। इसके बालों की कमली बहुत अच्छी होती है। रेगि-

स्तनों में जब लोगों को जल नहीं मिलता और प्यास के मारे छटपटाते हैं तो इसके पेट को फाड़कर एक थैली में जिसमें से कि जल भरा रहता है, निकालकर पीते हैं।

इसकी साठीया, राजपूतानी आदि कई जातियाँ होती हैं। साठिया चलने में सबसे तेज होता है। इसके व घोड़े के रोग प्रायः समान ही होते हैं।

हाथी

हाथी भारत के वैभवशाली सम्राटों तथा सामन्तों की सवारी है। आज कल सवारी के लिए इसको पालने वालों की संख्या दिन प्रतिदिन घटती जा रही है ।अब इससे ट्रैक्टर के हल चलवाने के प्रयोग हो रहे हैं। इस प्रयास में काफी सफलता मिल रही है। हाथी के कुछ रोग विशेष भी होते हैं। इन्हें हमने पृथक दिया है। हाथीदाँत के खिलौने और अन्य वस्तुयें बड़ी कीमती होती हैं।

दुधारू पशु की परीक्षा

प्रायः पशुपालक अनुभव की कमी के कारण ऐसे पशु पाल लेते हैं जो दुधारू नहीं होते और आर्थिक दृष्टि से हानिकारक सिद्ध होते हैं। ग्वाले इस विषय में बहुत कुछ जानते हैं पर अपने अनुभव को दूसरों से नहीं बताते। यहाँ पर सर्वसाधारण की जानकारी के लिए दुधारू पशुओं के लक्षण दिए जाते हैं।

चौड़ा कूल्हा जिसमें अन्तिम हड्डी का स्थान पर्याप्त चौड़ा हो और रानें इतनी चौड़ी हों कि उनमें थन भली-भाँति समा जायें। पीठ कंधों तक सीधी तथा लम्बी, नितम्ब के ऊपर का भाग सीधा और कमर से पूँछ तक की लम्बाई पर्याप्त हो। हृदय के निकट मोटाई और मध्यभाग

र पसलियों के कम फैलाव खराब पशु के लक्षण हैं। पसलियाँ बहुत निकट, सीना कम चौड़ा और पेट छोटा न हो।

आँखें बड़ी, सुडोल चेहरा, चौड़ी नाक बड़े नथुने व मुँह, ये अच्छे पशु के लक्षण हैं। नथुनों के चौड़े होने से फेफड़ों में आक्सीजन पर्याप्त मात्रा में पहुँचती रहती है। पशु का जबड़ा काफी सुदृढ़ होना चाहिए। गर्दन पतली हो और आँखें चमकीली हों तो समझना चाहिए कि पशु अच्छा है। पशु का सिर साफ, कुछ पतला और मुँह की ओर थोड़ा झुका हुआ-सा होना चाहिए।

पशुपालकों को सबसे अधिक पशु के थन देखने चाहिए। आगे और पीछे दोनो ओर के थन पेट से सटे हुए और चारो थन बराबर भरे हुए और समान अन्तर पर होने चाहिए। थन बड़े हों और ऊपर की नसें स्पष्ट दिखाई दें।

पशुशाला

पशुशाला तैयार करने का उद्देश्य, पशुओं को धूप, वर्षा और अन्य ऋतुओं के कुप्रभावों से बचाव के लिए साया प्रदान करना होता है। जंगली जानवरों से बचाव भी इसका उद्देश्य होता है। खुले हुए स्थान में रखने से पशु अधिक चारा खाते हैं; किंतु निरंतर खुले हुए स्थान में रखने से उनके स्वास्थ्य पर इसका बुरा प्रभाव भी पड़ सकता है। एक सुन्दर बाड़े में पशुओं के गर्मी व वर्षा से बचाव का प्रबंध होना चाहिए जिसमें छत होनी आवश्यक है। बाड़े, ऊँची भूमि पर कुछ ढलुवाँ होने चाहिए जिससे सफाई करने में आसानी हो। प्रकाश और वायु पर्याप्त आ सके। इसलिए रोशनदानों की व्यवस्था होनी आवश्यक है। फर्श ढालू और नालियाँ खुली होनी चाहिए। डेरीफार्मों के फर्श पक्के होने चाहिए ताकि पानी द्वारा पशुशाला को स्वच्छ किया जा सके। गाँवों में

फर्श कच्चे होते हैं। उस पर मूत्र और गोबर से सनी हुई मिट्टी, खाद और गोबर के गढ़ों में फेंककर नयी सूखी हुई मिट्टी डाल देना चाहिए।

मिट्टी के स्थान पर घास-फूस का भी उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार पशुपालन को एक अच्छी खाद भी मिल जायगी और पशुओं को आराम मिलने के साथ ही गंदगी से भी बचाव रहेगा।

गाय, बैल, भैंस आदि को, चारा देने के अतिरिक्त, बाड़े में छुट्टा रखना चाहिए। उन्हें इसकी स्वतंत्रता देनी चाहिए कि वे बाड़े में इधर-उधर घूम-फिर सकें। सर्दी, लू और वर्षा से बचने के लिए छप्पर आदि का प्रबंध कर दिया जाय; जिससे कि आवश्यकता प्रतीत होने पर वे उन के नीचे चले जायँ।

गोशाला—गायों, बैलों और भैंसों आदि के रहने के स्थान को कहते हैं। यदि ८-१० ही पशु हैं, तो गोशाला एक ही पंक्ति में रखी जा सकती है। अधिक होने पर दोहरी पंक्तियों में रखी जा सकती है। दोहरी पंक्तियों में रखने पर पशु आमने-सामने न बाँधे जायँ, नहीं तो संक्रामक रोगों के अधिक फैलने का डर रहता है। बाँधने पर उनकी पूँछ आमने-सामने रहे जिससे एक की श्वास दूसरे को हानिकर न हो सके।

भारतीय मत है कि गौओं के लिए एक ऐसा गोष्ठ बनाना चाहिए जिसमें कुत्ते, मक्खी, मच्छर, डाँस आदि का कोई विघ्न न रहे। गोबर, गोमूत्र तथा बचे-खुचे घास, चारे का कूड़ा न पड़ा रह जाय। गायों का गोष्ठ सारे देवताओं का निवास-स्थान है। उसमें मल नहीं डालना चाहिए। समझदार व्यक्ति को चाहिए कि गोष्ठ को अपने शयन करने के कमरे के समान साफ-सुथरा रखे। इसे सर्दी, गर्मी, वायु और धूल से समान भाव से बचाये रखना चाहिए। गो सामान्य प्राणी होने पर भी अपने प्राणों के समान उसे देखना चाहिये।

यहाँ पर दोहरी पंक्ति के गोशाले की एक योजना प्रस्तुत की जाती है। इसके चारों ओर ३½ से ४ फीट ऊँची दीवारें हों। यह ढंग एक खुली हुई शाला का है, जिसकी छत लोहे, लकड़ी या खम्भों

आदि पर रखनी चाहिए। प्रत्येक पशु के लिए ६० वर्गफीट स्थान उचित है।

गोशाला का नक्शा

चारा डालने का मार्ग
चरही या नाँदें
पशुओं के खड़े होने का स्थान
नाली
दुहने जाने के लिए मध्य मार्ग
नाली
पशुओं के खड़े होने का स्थान
चरही या नाँदें
चारा डालने का मार्ग

बछड़ों के लिए—बछड़ों के लिए खुले बाड़ों का प्रबन्ध अत्यावश्यक है; जिससे बच्चे कसरत के लिए भाग-दौड़ कर सकें। छप्पर के नीचे प्रत्येक बछड़े के लिए ३ वर्गफीट स्थान होने की आवश्यकता है। इनका स्थान गायों की शाला के निकट ही हो। पीने के लिए स्वच्छ पानी का भी प्रबन्ध हो। यदि हो सके तो ३ माह, ६ माह और

६ माह से अधिक के बछड़ों को अलग-अलग रखना चाहिए जिससे कि उनका प्रबंध सुचारु और सामूहिक रूप से किया जा सके।

साँड़ों के लिए स्थान १० फीट चौड़ा और १२ फीट लम्बा हो। इसके साथ ही लगा हुआ एक बाड़ा हो जिसमें वे इच्छानुसार घूम सकें। इसका स्थान ऐसी जगह हो, जहाँ से यह अन्य पशुओं को देख सकें।

अश्वशाला—प्रत्येक घोड़े के लिए लम्बे-लम्बे कमरे होना अधिक अच्छा है। दीवारें जहाँ तक हो ऊँची ही रखी जायँ। इसका फर्श भी आगे की ओर से ऊँचा और पीछे ढलुआँ होना चाहिए। रात्रि के समय घोड़ों के निकट मुलायम घास रख देनी चाहिए। ताकि वे रात में उसपर लेट भी सकें। कमरे की खिड़कियों और घोड़े के शरीर को ढकने के लिये पर्दे व कम्बलों का प्रबंध होना आवश्यक है। छप्पर से प्रत्येक घुड़साल में एक टोकरी में कोयला भरकर लटका देना चाहिए और प्रत्येक पंद्रहवें दिन उसे बदल देना चाहिये। पशुशाला में दी हुई सभी चीजों का ध्यान इसमें भी रखना चाहिए।

गजशाला—गजशाला जहाँ तक हो सके नगर के बाहर किसी रमणीक स्थान पर बनवानी चाहिए। इसे भी धूप, सर्दी व वर्षा से बचाने के लिये साया और प्रकाश व वायु के लिये खिड़कियों का प्रबंध होना आवश्यक है। धूप निकलते ही पीलवान को चाहिए कि उसे शाला के निकालकर टहला लावे। जाड़ों में सूर्यास्त के पूर्व ही उसे गजशाला में बाँध देना चाहिए। स्थान डीलडौल के अनुसार अपेक्षाकृत बड़ा रखें।

भेंड़ और बकरी का बाड़ा—इनके बाड़े सदैव किसी ऊँची और ढलुवाँ भूमि पर बनाना चाहिए। उनके निकट फैले हुये अच्छे चरागाह हों। बाहरी दीवार के लिये काँटेदार झाड़ियाँ पर्याप्त हैं किन्तु यह इतनी ऊँची हों कि भेड़िया आदि जंगली पशु प्रवेश न कर सकें। एक ६० फीट लम्बा और ५० फीट चौड़ा बाड़ा ५० भेड़ों के रहने के

लिये पर्याप्त है। इसके मध्य में एक खुला छप्पर २० फीट लम्बी और १५ फीट चौड़ी भूमि पर होना चाहिए जिससे सर्दी, गर्मी और वर्षा आदि से बचने के लिये वे उसमें जा सकें। पहाड़ी भागों में जहाँ शीत का अधिक प्रकोप होता है, छप्पर के चारो ओर दीवार की अत्यंत आवश्यकता है। नर भेड़ों के लिये १५×१५ फीट का बाड़ा काफी है। इसमें ६×६ फीट का छप्पर बाड़े के बीच होना चाहिए। मध्य में लाहौरी नमक का एक टुकड़ा रखा रहना चाहिए जिससे कि भेड़ आवश्यकतानुसार उसे चाटें। पानी की चरही भी होनी चाहिए। बाड़े की चौकीदारी के लिये २-१ कुत्ते अवश्य रखे जायँ।

सुअरों का बाड़ा—सुअरों का बाड़ा प्राय: अधिक ऊँचा नहीं होता। इन्हें छोटी-छोटी कोठरीनुमा बैरकों में रखा जाना चाहिए। गाँवों में उनके बाड़े बड़े गन्दे रहते हैं। इनकी सफाई और रोशनी का विशेष प्रबंध होना आवश्यक है। इन्हें कम उपयोगी पशु न समझा जाय।

पशुओं का आहार

आधुनिक विज्ञान की सर्वतोमुखी उन्नति होने पर भी प्राय: पशु-पालक अज्ञानवश पशुओं के आहार में पुराने ढंग से ही काम लेते हैं। प्राणीमात्र के जीवन-चक्र को गति देनेवाली सर्वप्रधान प्रेरणाशक्ति उसकी अपनी खाद्य वस्तु खाने की सहज प्रवृत्ति है। प्रत्येक पशु का ओज, बल और उसके द्वारा किया हुआ समस्त परिश्रम उस घास, चारे और दाना पानी पर निर्भर है जिसे वह खाकर हजम करता है। पशुपालन में सब से अधिक व्यय उनकी खूराक का ही है। अतएव पशुओं को वही और उतना ही आहार दें जो कम खर्च में अधिक से अधिक पोषण-तत्व प्रदान करे।

पशुओं के आहार के मूल अंश हैं—(१) जल, (२) प्रोटीन, (३) कार्बोहाइड्रेट (कार्बन, आक्सीजन और हाइड्रोजन गैसों के अंश), (४) स्नेह पदार्थ अर्थात् वसायें (Fats=चर्बी), (५) खनिज द्रव्य, (६) जीवनीय गण (विटामिन) ।

जल—प्रत्येक चारे में होनेवाली जल की मात्रा से पौष्टिक अंश को जाना जाता है । यह जल ही है जो शरीर के अन्दर घुलनेवाले उत्तम पोषक द्रव्यों और जीवनीयगणों का वाहक बनकर पोषक द्रव्यों को पचाकर निःसार भाग को बाहर निकाल देता है । सूखी घास, भूसा, पुवाल, खली और नाज आदि सूखे चारे में जल की मात्रा १५ प्रतिशत तक है । इसके विपरीत हरीघास जैसे हरे चारे में उनके परिपाक भेद से जल की मात्रा प्रायः ७० से ९० प्रतिशत तक होती है । ठाँठ पशुओं की अपेक्षा दुधारू पशुओं को जल की अधिक आवश्यकता होती है ।

प्रोटीन—इसे रक्त और रक्तवाहिनी नसों का पोषक कहा जाता है । शरीर की वृद्धि नाड़ियों की दुरुस्ती, पुट्ठों की उत्पत्ति, मांस, दूध आदि बढ़ाने के हेतु प्रोटीन एक आवश्यक तत्व है । खली, फलीदार बीज (दालें), मूंगफली और अलसी आदि तिलहनों और चोकर आदि में प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है । फलीदार फसलों से प्राप्त भूसे और शीघ्र ही काट ली गई घास में यह मात्रा अपेक्षाकृत कुछ कम होती है । भूसी, पुआल और करबी तथा अधिक पकी हुई घासों में तो प्रोटीन नाममात्र को ही होती है ।

कार्बोहाइड्रेट—यह शरीर के ताप-मान को बनाये रखने और शरीर की सब प्रक्रियाओं को समुचित रूप से चलाने के हेतु आवश्यक शक्ति को उत्पन्न करने के लिये आवश्यक है । पौधों का अधिकांश भाग शर्करा, मांड, लासा और सेल्युलोस (पौदों के बिनागूदे के डंठलों तथा कच्चे तन्तुओं) का बना होता है । यही 'कार्बोहाइड्रेट' कहलाते हैं । रेशे कम पुष्टिकारक होते हैं । कार्बोहाइड्रेट के कुछ अंश घुलनशील

होते हैं और कुछ नहीं। मांड और शर्करा घुलनशील होते हैं। सभी अन्न, चारे और भूसे इसी कोटि में आते हैं।

वसायें (चर्बी) और स्नेहपदार्थ (चिकनाइयाँ—Fats & Oils)—वसायें शरीर की शक्ति बढ़ाने और शरीर तथा दूध में स्निग्धता उत्पन्न करनेवाले पोषक गुण को बढ़ाती हैं। आहार में चर्बी और चिकनाई शरीर में गर्मी और शक्ति पहुँचाने अथवा वसा उत्पन्न करने के हेतु आवश्यक है। इन प्रयोजनों के लिये यह प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेटों की अपेक्षा दो से ढाई गुना अधिक उपयोगी है। खली में अनाज के दानों, और दालों की अपेक्षा यह तत्व कम ही होते हैं।

खनिज द्रव्य ❀ (Minerals)—यह द्रव्य शरीर की वृद्धि, इनमें की बनावट, सींग, खुर और बालों के लिये आवश्यक हैं। इनमें से सोडा, पोटाश, चूना, मैगनेशिया, लोहा, फास्फोरिक एसिड, अम्ल, क्लोरीन आदि हैं। ४०० पौंड वजन की दुधारू गाय को ३ पौंड खनिज द्रव्य आहार में आवश्यक हैं। शरीर की राख का ७० प्रतिशत से अधिक भाग कैल्शियम और फास्फोरिक एसिड होता है और शरीर का ९९ प्रतिशत कैल्शियम और ८० प्रतिशत फास्फोरिक एसिड हड्डियों और दाँतों में होता है। इसलिये यह आवश्यक है कि इसकी कमी को पूरा किया जाय।

जीवनीयगण (विटामिन)—उपरोक्त पदार्थों के अतिरिक्त जीवनीयगण (विटामिन) भी ऐसे पदार्थ हैं जो सामान्य शारीरिक वृद्धि और विकास के हेतु अत्यावश्यक हैं। साधारणतः ६ जीवनीय तत्वों की सत्ता तो निश्चित की जा चुकी है। साधारण रूप से इनके नाम ए, बी,

---

❀ भोजन में पानी, जैव पदार्थ, प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट्स आदि, और खनिज द्रव्य होते हैं। जब कोई वस्तु जल जाती है तो उसका जल उड़ जाता है और जैव पदार्थ नष्ट हो जाते हैं। बची हुई राख में खनिज पदार्थ वर्तमान रहते हैं।

सी, डी, ई और क हैं। कृषि में काम करनेवाले पशुओं के लिये 'ए' और 'डी' विटामिन ही आवश्यक है। 'ए' विटामिन हरी घास और सीलेज (गढ़ों में रखी हुई हरी घास या हरी फसल) में और 'डी' सूखे चारे चोकर और भूसी में बहुत होता है।

पशुओं के आहार के सिद्धान्त—पशु को दिये जानेवाले खाद्य का पर्याप्त अंश शरीर को गर्म रखने, इधर-उधर घूमने-फिरने, खाने-पीने और शरीर में होनेवाले नित्य के परिवर्तनों तथा साँस आदि लेने में खर्च हो जाता है। शेष अंश उसे दूध देने और श्रम करने की क्षमता प्रदान करता है। आहार के इसी अंश को पशु की खूराक का उत्पादक भाग कहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक पशु को जीवन-निर्वाह के हेतु पर्याप्त आहार देने के साथ ही उससे दूध और श्रम लेने के लिये उसे इसके अतिरिक्त कुछ और भी आहार दिया जाना चाहिए जो कि वाञ्छित उत्पादन की मात्रा एवं गुण को उत्पन्न कर सके। पशुओं के विभिन्न प्रयोजनों के हेतु पौष्टिक आहार सम्बन्धी आवश्यकतायें भी भिन्न-भिन्न होती हैं।

आहार की वस्तुयें—आहार की वस्तुओं को साधारणतया दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है:—(१) घास-भूसा आदि मोटे चारे (Rough ages) (२) दाना (Concentrates)। इनके अतिरिक्त जड़ों और कन्दों का एक तीसरा वर्ग भी कहा जा सकता है।

घास-भूसा आदि मोटे चारे— चरी, खर, भूसा, करबी, रागीघास, सोलेज, रिजका, दूब आदि इसी वर्ग में आती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि हरे चारों में सूखों की अपेक्षा अधिक पौष्टिक तत्व होते हैं। सूखे चारे को पचाना भी कठिन होता है। हरे चारे अधिक स्वादिष्ट और विटामिनयुक्त होते हैं। जल्दी ही बढ़ी हुई घास में पुरानी और अधिक बढ़ी हुई घास की अपेक्षा अधिक जल होता है। अधपकी घासें अधिक सुपाच्य होती हैं। बढ़ी हुई घास में प्रोटीन घट जाता है। और कार्बोहाइड्रेट बढ़ जाता है। पकी हुई घास में बहुत कम

शक्ति रहती है। हरा चारा देते समय यह ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है कि हरे चारे में पानी का अंश अधिक होता है और इसके अधिक खाने से पशु का पेट बढ़ जाने की विशेष आशंका होती है। बैलों और अच्छे घोड़ों को हरी घास या हरा चारा एक नियत मात्रा में ही देना चाहिये। वैसे शुष्क चारे से हरा चारा अपेक्षाकृत अधिक होना आवश्यक है।

यह खेद की बात है कि हमारे देश में गोचर-भूमियों की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। इसकी उन्नति नियमित चराई पर ही निर्भर करती है। ८-१० इंच से बड़ी और ४-५ इंच से छोटी घास वाले चरागाह पशुओं की चराई के योग्य नहीं होते। पशुओं को बारी-बारी से भिन्न-भिन्न भागों में चराना चाहिये। इसके लिये आवश्यक है कि अंजन, दूब, पलवा, स्वांक आदि अच्छे किस्म की घासें बोई जायँ और वर्षा के पानी से सिंचाई की जाय और उसकी नमी को अधिक समय तक बनाये रखा जाय। हरी घास जितनी ही जल्दी काट ली जायगी सूखने पर उसमें प्रोटीन की मात्रा उतनी ही अधिक और रेशों का प्रतिशत उतना ही कम होगा। घोड़ों के लिये पूरी बढ़ी हुई हरी घास का चारा अधिक पसंद किया जाता है। चरागाहों की सुरक्षा के लिए प्राचीन काल से ही बड़ा महत्व दिया गया है। मनु महाराज का मत है को गाँव के आस-पास चारो ओर सौ धनुष अर्थात् चार सौ हाथ अथवा तीन बार फेंकने से लकड़ी जहाँ गिरे वहाँ तक की भूमि और नगर के आसपास चारो ओर इससे तीन गुनी भूमि गायों के चरने के लिये छोड़ देनी चाहिये। यदि इस भूमि में किसी ऐसी कृषि को जिसके चारो ओर रोक न हो, पशु नष्ट कर दें तो इसके लिये राजा पशुरक्षकों को दण्ड न दे।

सूखी घास—हरी घास के न मिलने पर सूखी घास का उपयोग किया जाता है। हरी घास जितनी जल्दी काट ली जायगी

सूखने पर उसमें उतनी ही अधिक प्रोटीन की मात्रा होगी। घोड़ों के लिये पूरी बढ़ी हुई हरी घास का चारा अधिक पसंद किया जाता है।

सिलेज—हमारे यहाँ गाँवों में तैयार की जानेवाली हरी घास की फसलें किसान एक साथ ही पशुओं को नहीं खिला पाते। वे चारे को सुखाकर रखते और खिलाते हैं जो न तो उतना स्वादिष्ट होता है और न उतना पौष्टिक ही। इसके लिये खन्ती तैयार करने का एक नया ढंग निकाला गया है।

एक ८ फीट लम्बा, ६ फीट चौड़ा और सुविधानुसार गहरा गढ़ा खोदकर, उसमें चारो ओर साबुत चरी के गट्ठे बिछा दिये जाते हैं। बाद में इसमें कुट्टी काटकर भरी जाती है। ६ इंच कुट्टी की तह लगाने के बाद उस पर नमक या शीरे का घोल छिड़का जाता है। इसी प्रकार कुट्टी को खूब दबाकर ६-६ इंच की तहें लगाकर भर दें और अंत में जब एक फिट गढ़ा शेष रहे तो उसमें फिर साबुत चारा भर दें। दीवारों के चारो ओर भी चरी के गट्ठे रखे होने चाहिये। अंत में ६ इंच ऊँची मिट्टी कूटकर ऊपर से लीप दें। मिट्टी डालने में यह ध्यान रहे कि बीच का भाग ऊँचा हो और दोनो ओर ढाल रहे जिससे पानी न रुक सके। इन खन्तियों में भरने के लिये ज्वार, बाजरा, नेपियर घास तथा मक्का आदि की फसलें रखी जायँ जिनमें कि मिठास का अंश हो। इन फसलों में जब दाने पड़ने का समय निकट हो तभी इन्हें भरा जाय। गढ़ा ऊँचे स्थान पर ही बनाना चाहिये।

यह चारा किस मात्रा में पशुओं को दिया जाय, इस संबंध में पशु-पालन के विशेषज्ञों का मत है कि प्रति १०० पौंड के भार पर दुधारू गाय-भैंसों को डेढ़ से दो सेर तक दिया जाय। दुधारू न होने पर यह मात्रा कुछ कम कर दी जाय। ब्याने वाली भेड़ों को एक सेर और मेमनों को तगड़ा करने के लिये १०० पौंड भार पर १०५ से ३ पौंड तक देने की सिफारिश की जाती है। गाभिन पशु और घोड़ों को सिलेज न खिलाना चाहिये।

भूसा व पुवाल—इनमें पौष्टिक तत्व नाम मात्र को ही पाये जाते हैं; दूध देनेवाले पशुओं घोड़े और बैल आदि परिश्रम करने वाले पशुओं, तथा ऐसे पशुओं को जो बढ़ने और मोटे होनेवाले हैं, उनके चारे में भूसे की मात्रा अधिक न होनी चाहिये। यदि थोड़ा दिया भी जाय तो उसके साथ दाने की मात्रा भी अधिक होनी चाहिये। भूसे की खपत परिश्रम न करनेवाले या दूध न देनेवाले पशुओं को खिलाकर की जा सकती है।

परीक्षण के पश्चात् देखा गया है कि जई का भूसा सर्वाधिक पुष्टिकारक होता है। दालों के भूसे अन्य अनाजों के भूसे से अधिक पौष्टिक होते हैं।

दाना—इसे तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(१) अनाज तथा बीज, (२) खली और (३) विभिन्न प्रकार की अतिरिक्त उत्पत्तियाँ। हम इनमें से प्रत्येक पर पृथक-पृथक विचार करेंगे।

अनाज व बीज—इस वर्ग में चना, बिनौला, जौ, जई, ज्वार, मक्का, बाजरा, अलसी आदि हैं। चना को छोड़ बाकी में कार्बोहाइड्रेट्स तो अधिक होती है किंतु प्रोटीन कम। प्रोटीन की कमी होने के साथ-साथ सभी खाद्यान्नों की प्रोटीनों में पौष्टिकता की भी कमी कभी-कभी रहती है। इसलिए इनके साथ ही दालों के चारे और खलियाँ आदि ऐसी चीजें भी दें जिनमें कि प्रोटीन की मात्रा पर्याप्त होती हो। बढ़नेवाले भैंसों के लिए खलियों के साथ खिलाये जाने पर जौ और बाजरा, मक्का और ज्वार की अपेक्षा अधिक लाभदायक होते हैं। जई घोड़ों को खिलाने में अधिक काम आती है। वैसे जई स्वादिष्ट तो होती है परंतु सुपाच्य नहीं। स्वादिष्ट और अन्य अनाजों से अधिक प्रोटीन होने के कारण चना हमारे देश में चौपायों और विशेषकर घोड़ों को खिलाने के लिए सबसे अधिक पसंद किया जाता है। तिलहन की फसलों में बिनौला और अलसी ही दुधारू पशुओं को खिलाने के काम आती है। गाय भैंस आदि के अतिरिक्त

अन्य वर्ग के पशुओं को बिनौले देना वांछनीय नहीं है। चार-छः मास से कम के बछड़ों के लिये इसकी मात्रा बहुत सीमित ही रखनी चाहिए। अलसी प्रायः उस समय खिलाई जाती है जब पशुओं, के पाचक अवयवों में जलन होती हो। बिनौले और अलसी को, देने से पूर्व उबलते हुए पानी में डाल दें और डेढ़-दो घंटे बराबर गर्म रखें।

खली—प्रत्ये चीज की खली में प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। हमारे देश में प्रोटीन की पूर्ति करनेवाला अल्पव्यय-साध्य साधन खली को ही कहा जा सकता है। पशुओं के खिलाने में नारियल, बिनौला, मूंगफली, अलसी, सरसों और तिल की खलियाँ काम आती हैं। अलसी की खली स्वादिष्ट, उच्चकोटि की प्रोटीन से युक्त और रोचक होने के कारण प्रायः सभी पशुओं को खिलाई जा सकती है। सरसों की खली एक श्रेष्ठ खुराक है। किन्तु अधिक मात्रा में खिलाने से कुछ हानिकारक भीसिद्ध हो सकती है। गाय को २ सेर और अन्य बड़े पशुओं को १ सेर प्रतिदिन के हिसाब से खिलाना लाभप्रद है। जहाँ तक संभव हो गाभिन पशुओं और बछड़ों को सरसों की खली न दें। मूँगफली की खली प्रोटीन की पूर्ति करने वाले सर्वोत्तम पदार्थों में से एक है। बिनौले की खली दुधारू पशुओं के लिये अत्यन्त लाभकर है किन्तु इसे शीघ्र ब्यानेवाली गौ का न दें। इसमें मल रोकने का गुण होने के कारण मक्खन कड़ा पड़ जाता है। तिल की खली सभी पशुओं को दी जा सकती है किन्तु मात्रा अधिक होने पर वह बिनौले के विपरीत मक्खन को अधिक मुलायम बनाती है।

अन्य उत्पत्तियाँ---इस वर्ग में गेहूँ आदि के चोकर, विभिन्न दालों की चूनी, शीरा, स्किम्ड मिल्क और मछली के चूर्ण आदि आते हैं। गेहूँ का चोकर स्वादिष्ट, भारी और सामान्य रोचक होने के कारण दुधारू गायों के लिये अधिक पसंद किया जाता है। चावल का चोकर भी प्रायः गेहूँ के चोकर के समान ही होता है। अच्छी अरहर अथवा मूँग, चूनी प्रायः चने के समान ही लाभप्रद होती है। शीरे

को खली के साथ मिलाकर देने से पशुओं के आहार में अनाजों की मात्रा घटाई जा सकती है। इसमें कार्बोहाइड्रेट तो काफी होता है परन्तु प्रोटीन कम ही होती है। दो सेर जौ के स्थान पर १० छटाँक सरसों की खली और डेढ़ सेर शीरे का मिश्रण पर्याप्त होता है।

इसी प्रकार मक्खन निकले हुये दूध का उपयोग बछड़ों, सुअर के बच्चों और मुर्गियों को पिलाकर किया जा सकता है। वैज्ञानिकों ने प्रोटीन, चूना और फासफोरिकएसिड की कमी दूर करने के लिए मछली का चूर्ण अत्यधिक उपयोगी बताया है। बछड़ों के समुचित पोषण और बढ़ाव के लिये तथा मुर्गियों और सुअर के बच्चों के लिये यह अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होता है।

गर्भ के समय का आहार—गर्भ धारण करने के पूर्व से ही पशु को स्वास्थ्यकर, पुष्टिकारक एवं उत्तम आहार देना चाहिये। ब्याने के दो मास पूर्व ही पशुपालक को दुहाई बन्द कर देनी चाहिये। गर्भ-काल के अन्तिम दो-तीन मास बच्चे की वृद्धि के लिये अतिरिक्त पौष्टिक दाना भी देना आवश्यक है। यह ध्यान रहे कि अधिक चर्बी बढ़ जाने से गर्भाशय संकुचित हो जाता है और बच्चा छोटा उत्पन्न होता है। अतएव ऐसे चारे अधिक मात्रा में न दें।

दुधारू पशुओं का चारा—दुधारू पशुओं को जीवन-यापन के लिये सामान्य चारे की भरपेट मात्रा देने के साथ ही प्रति डेढ़ सेर दूध के लिये आध सेर पौष्टिक दाना भी देना चाहिए। इस दूध की मात्रा में बछड़े द्वारा पिये जाने वाला दूध भी सम्मिलित है। भैंस, भेड़ और सुअरी के दूध में गाय के दूध से प्रोटीन और चिकनाई की मात्रा अधिक होती है, अतएव इन्हें अपेक्षाकृत पुष्टिकर आहार देना चाहिये। यदि चारे में मोटे चारे की अधिकता है तो उसी अनुपात से दाने की मात्रा बढ़ा देनी चाहिये। ऐसे चारे जिनसे दूध के स्वाद में कोई अन्तर आ जाय जैसे प्याज, लहसुन, शलजम, पातगोभी, सरसों

आदि, तो दुहने के बाद या दुहने के ४-५ घण्टे पूर्व वे खिलाने चाहिए। हम यहाँ राजकीय और फौजी डेयरी फार्मों में व्यवहृत होनेवाले कुछ मिश्रण दे रहे हैं। इनमें से कोई एक देना पर्याप्त है।

मिश्रण	सा	दला हुआ चना	दला हुआ जौ	मूँगफली की खली	बिनौले की खली
१	४	१	१	२	×
२	४	×	२	२	×
३	४	१	१	×	२
४	४	२	×	×	२
५	४	१	२	१	×
६	३	×	२	×	३
७	३	१	२	×	२
८	५	१	×	२	×
६	५	×	१	×	२

बछड़ों का आहार—६ माह की आयु तक दूध पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए। दूध की कठिनता होने पर २०-२५ दिन तक तो केवल दूध ही दिया जाना चाहिए। फिर इसे धीरे-धीरे घटाया जा सकता है। थोड़ा मात्रा में मक्खन निकाला दूध देकर दूसरे महीने के बाद से दूध की मात्रा क्रमशः घटाकर ढाई महीने बाद दूध एकदम बन्द किया जा सकता है। उन्हें असली दूध कम दिया जाय तो

उसके साथ ५० भाग अलसी की खली, ३० भाग जौ या मक्ई और २० भाग गेहूँ के चोकर से तैयार किया हुआ पौष्टिक चारा दिया जाय। खली और अनाज सदैव दलकर महीन बनाकर ही देना चाहिये। पौष्टिक चारे में २ प्रतिशत खड़िया और १ प्रतिशत नमक मिला देना चाहिये।

इसके १५ दिन बाद दूध की मात्रा घटाकर पौष्टिक आहार की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। जाड़े में मक्खन निकले दूध को पिलाने के पूर्व उसे गर्म कर लेना चाहिये। बरसीम या सोयाबीन आदि को सूखी घासें भी थोड़ी मात्रा में दी जा सकती हैं।

सूखी घास की मात्रा क्रमशः बढ़ाते रहना चाहिए और ५ मास की आयु में भूसा और सामान्य ताजी घासें भी दी जा सकती हैं। प्रायः २ महीने में वे चरने जाने के भी योग्य हो जाते हैं। इसके पश्चात् १० माह तक की आयु तक बछड़ों को पौष्टिक चारे-दाने की व्यवस्था अधिक करने की आवश्यकता पड़ती है।

परिश्रमी पशुओं का चारा---सामान्य चारे के साथ श्रम करनेवाले पशुओं को कुछ अतिरिक्त पौष्टिक आहार अवश्य मिलना चाहिये। इन्हें नित्य १ छटाँक नमक दिया जाना चाहिए। इन्हें सूखे और मोटे व तरल पदार्थ न दें। इन्हें परिश्रम करने के बाद सुस्ता लेने दें और तभी चारा-दाना देवें। इन्हें चौथाई प्रातः, चौथाई मध्याह्न, आधा रात्रि को, इस प्रकार तीन बार में पूरा आहार दे देना चाहिए।

बैलों का चारा—यदि सामान्य घासें दी जाय तो परिश्रम करने वाले बैलों को प्रति चार घन्टे पर ५ पौंड पौष्टिक आहार पर्याप्त होता है।

घोड़ों का आहार—घोड़े का पेट जुगाली करनेवाले पशुओं की अपेक्षा छोटा होता है, अतएव इन्हें उनकी अपेक्षा सूखे पदार्थ कम ही देने चाहिये। हमारे देश में घोड़ों को सामान्यतया चना अधिक दिया जाता है। गेहूँ का चोकर कुछ रेचक होने के कारण घोड़ों को खिलाने के लिये

उत्तम खाद्य है। प्रोटीन की कमी वाली चीजों के साथ अलसी की खली देकर उक्त तत्व की पूर्ति कर दें। लद्दू घोड़ों को प्रति १०० पौंड भार पर १ से १.५ पौंड से अधिक सूखी घास न देनी चाहिये।

बकरी का आहार—यह खुरदुरे चारे को अधिक पसन्द करती हैं। चराई के लिए अच्छे चरागाह होने पर इन्हें अन्य चारे-दाने की विशेष आवश्यकता नहीं रहती। यदि बकरी दूध देती है तो उसे दूध के अनुपात से विशेष अतिरिक्त आहार देना चाहिए। प्रत्येक अच्छी दुधार बकरी के लिए १ से २ पौंड तक पुष्टिकारक सानी और तीन पौंड सूखी घास पर्याप्त है। चराई का उत्तम प्रबन्ध होने पर दाने की मात्रा कम की जा सकती है।

भेड़ों का आहार—बकरियों के समान भेड़ें भी खुरदुरे चारे को अधिक पसन्द करती हैं और चराई के लिए अच्छा प्रबन्ध होने पर दाने की विशेष आवश्यकता नहीं होती। सामान्यतया नित्यप्रति तीन पौंड सूखा पदार्थ १.८ पौंड स्टार्च और ०.२५ पौंड सुपाच्य प्रोटीन दिया जाना चाहिये। अच्छे चरागाहों के अभाव में ०.५ पौंड पौष्टिक दाना देना अनिवार्य है। मक्का, जौ और ज्वार के दाने थोड़ी-सी खली के साथ मिलाने से भेड़ों का उपयुक्त पौष्टिक आहार तैयार हो जाता है। ऊन के उत्पादन के निमित्त भेड़ को बकरी की अपेक्षा अधिक प्रोटीन देना आवश्यक है। प्रतिदिन ०.२५ औंस नमक अवश्य देना चाहिये। खारी भूमि में चरने से इनके बाल कड़े पड़ जाते हैं। प्रतिदिन एक भेड़ १ से १५ गैलन तक पानी पी जाती है। अतएव इनके रहने के स्थान में पानी की पूरी व्यवस्था कर देना नितांत आवश्यक है।

सुअरों का आहार—मादा को पौष्टिक आहार की अधिक आवश्यकता होती है। क्योंकि इनका विकास बहुत शीघ्र ही होता है और कम आयु में ही अधिक बच्चों को दूध पिलाना पड़ता है। उपयुक्त और पर्याप्त आहार के अभाव में इन्हें अन्य पशुओं की अपेक्षा अधिक हानि

पहुँचती है। रेशेदार चारा सुपाच्य नहीं होता, अतएव इन्हें पौष्टिक आहार की अधिक आवश्यकता होती है। अन्न दिये जाने पर प्रोटीन और कैल्शियम की पूर्ति के लिए मक्खन निकला दूध, मांस के टुकड़े, मछली का चूर्ण, फलीदार चारे, हरीघास, तीसी और मूंगफली की खली देना चाहिए। गर्भ में सुअर के बच्चों के अंगों के विकास और दूध की वृद्धि के लिए प्रोटीन एक अत्यंत आवश्यक तत्व है। अच्छे मोटे चारे के अतिरिक्त प्रति १०० पौंड शरीर के भार पर एक वर्ष के बच्चे को १.५ पौंड, तरुण सुअरी को १.७ पौंड और गर्भिणी मादा को .९ पौंड से १ पौंड (गर्भ के प्रथम तीन माह तक) व १.२ से १.३ पौंड (अन्तिम डेढ़ माह तक) पौष्टिक चारे की आवश्यकता होती है। इनका सर्वश्रेष्ठ आहार ढाई तीन सेर मलाई उतारा हुआ दूध है। केवल दूध शायद न पचे, अत: मलाई निकाला दूध किसी बर्तन में रखकर खट्टा कर लेना मुनासिब है। यह सेम, मटर, दाल की भूसी, चूनी का मिश्रण, शलजम, गोभी आदि बड़े चाव से खाती है। प्राय: लोग चौथाई पौंड नमक और १ पौंड चाक या चूने का कंकड़ पीसकर इन्हें दिये जानेवाले मिश्रण में मिलाकर देते हैं। जहाँ दूध का अभाव है उन क्षेत्रों के लिए पशु-आहार-विशेषज्ञों ने निम्न तालिका के अनुसार मिश्रण देने की सिफारिश की है।

सुअरों के पौष्टिक चारे की तालिका का अनुपात

	कटी हुई मकाई, ज्वार या जौ	मछली या मांस	अलसी की खली	छिलके निकाली मूँगफली	सूखी फलियाँ व चारा
बढ़ने और मोट होनेवाले सुअर	८०	१०	५	....	५
	८८	६	६	....	....
	८८	....	६	६	....
ब्यानेवाली बड़ी सुअरी व सुअर	८२	४	४	....	१०
	६२	४	४	....	....
	९२	....	४	४	....

हाथी का आहार—हाथी का आहार ऋतु के साथ ही बदलता रहता है। बसंत में गन्ना और उसका रस बड़े प्रम से लेता है। दारुमण्ड और मधु भी लाभदायक है। गर्मी में हरे पत्ते व कोमल घास देनी चाहिये। घी पिलाने वह उसकी मालिश से बड़ा लाभ पहुँचता है। वर्षा ऋतु में मांस, लहसुन, नमक और हल्दी विशेष रूप से देनी चाहिये। शरद् में घी देना चाहिये। हेमन्त में तेल पिलाना और उसकी मालिश करनी चाहिये। मछली और जंगली जंतुओं का मांस देना भी बड़ा गुणकारी होता है। शिशिर में घी, तेल, लहसुन, प्याज, हल्दी और मदिरा का सेवन कराना चाहिये। इसके नित्य प्रति के सामान्य आहार में मुख्यतया आटे की मोटी और बड़ी रोटियाँ जिन्हें हथरोट कहते हैं दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त बरगद और गन्ना इसका प्रिय आहार है। हरे चारे और पीपल, महुआ आदि भी बड़े चाव से खाता है।

इससे मांस, पूड़ी, पुआ, घी के लड्डू आदि भी बलवृद्धि के लिये दिये जाते हैं। खीर में शक्कर मिलाकर देने से इसका बल बढ़ता है।

गर्भाधान

(अ) साँड़ से (ब) कृत्रिम

पशुओं के गर्भाधान कराने की दो रीतियाँ हैं--(१) साँड़ द्वारा और (२) कृत्रिम प्रणाली से। हम यहाँ इन पर प्रकाश डालेंगे।

साँड़ द्वारा—यह बहुधा कहा जाता है कि पशुओं के झुंड का ५० प्रतिशत मूल्य साँड़ पर निर्भर करता है। साँड़ ही आधा धन और आधा गोधन है, (Bull is half the herd) यह बात नितान्त सत्य है। हमारे यहाँ प्राचीन काल से ही साँड़ को अत्यधिक महत्व दिया गया है। सौ सौ गायों के वृन्द का वीर्यदाता यूथपति, रक्षा तथा महान् वीर्यवान साँड़ को 'गवेन्द्र' के पद से विभूषित किया गया है।

आज भी अमेरिका आदि देशों में लाखों के मूल्य के साँड़ पशुसृष्टि में युग-परिवर्तन कर रहे हैं।

साँड़ का चुनाव—प्रजनन के निमित्त साँड़ों के चुनाव में कई बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। सर्वप्रथम यह देख लें कि साँड़ किसी अच्छे वंश का हो। इसके लिये यह आवश्यक है कि इसे किसी बड़े फार्म में जाकर इसके माता-पिता का पूरा पता लगाकर ही खरीदा जाय। उसका आकार प्रकार कद आदि अपने अभिजात नस्ल के अच्छे लक्षणों के अनुसार ही हों। दूसरे, साँड़ में गाय को गाभिन करने की योग्यता हो। इसे किसी गरमाई गाय को लाकर वास्तविक परीक्षा के द्वारा जाना जा सकता है। अंडकोष बराबर और एक ही स्तर पर सुडौल होने चाहिये। उनमें किसी प्रकार की कठोरता और सूजन न हो। अंडकोष की चमड़ी स्वतंत्रता-पूर्वक हिल सके। तीसरे, साँड़ के पैरों विशेषकर पिछली टांगों में कोई खराबी न हो। पैर के टूटा होने, खुरों के बड़े होने, पैर में फोड़ा होने या लँगड़ाने से साँड़ इच्छा-पूर्वक संभोग नहीं कर पाता। चौथे, मुतान जहाँ तक हो खूब चुस्त हो। पाँचवें, उसे किसी पशुचिकित्सक को दिखाकर यह निश्चय कर लें कि उसे तपेदिक, जोंस या अन्य किसी प्रकार के छूत के रोग न हों।

उन्नत नस्लें—नस्ल बनाने के लिये बैल साँड़ों में हरियाना, साहीवाल, सिन्धी, पँवार, खेरीगढ़, मेवाती (कोसी) और गंगातीरी नस्लें अच्छी होती हैं। भैंसा-साँड़ों में मुर्रा भैंसा सर्वश्रेष्ठ होता है। इसके अतिरिक्त तराई और भदावरी आदि जातियाँ भी उन्नत किस्म की होती हैं। इसी प्रकार घोड़ों, बकरों, भेड़ों और कुत्तों में भी उन्नतिशील जातियों के साँड़ रखने चाहिये। भेड़ों की उन्नति के लिये सरकार 'मेरिनों' नामक भेड़ा पहाड़ी क्षेत्रों में बाँटने जा रही है। हम विभिन्न पशुओं की भिन्न-भिन्न जातियों पर प्रकाश डाल चुके हैं। पशुपालकों को चाहिये कि उन्नतिशील जातियों के ही साँड़ों को रखें। हमने विभिन्न जातियों के लक्षण आदि भी दे दिये हैं जिनसे पशुपालक लाभ उठा सकते हैं।

निम्न नस्लों का नियमन—उन्नतिशील नौजवान साँड़ के मलते ही अधिक आयु के साँड़ को वधिया करा देना चाहिये। यदि साँड़ किसी उन्नतिशील अथवा विशेष जाति का नहीं है तो भी निकट के पशुचिकित्सक को बुलाकर शीघ्र ही उसे बधिया करा देना चाहिये।

गाभिन करना—साँड़ के संबन्ध में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह एक दिन में दो से अधिक गायों से न मिले। एक से प्रात: और दूसरी से सायंकाल। मादा पशु पूर्ण रूप से गर्म हो चुकी हो और उसके गर्भपात आदि जैसा कोई छूत का रोग न हो। स्थान भेद से विभिन्न क्षेत्रों में मादा पशुओं के गर्म होने के समय अलग-अलग होते हैं। इस समय के प्रारंभ से पूरे ऋतु भर सामान्यतया दिये जानेवाले राशन के साथ ही साँड़ को थोड़ा-सा गुड़ भी अवश्य दें। भेड़ों के बाड़े में नर भेड़े को अप्रैल से जून तक ही छोड़ना चाहिये, जिससे कि सितम्बर से नवम्बर तक बच्चे पैदा हों। इस समय के अतिरिक्त नर भेड़े को अलग रखना चाहिए। उसे, गाभिन होने की ऋतु में रात को उसके सीने में कच्चा रंग लगाकर छोड़ देना चाहिये जिससे कि वह जिस भेड़ के पास जाय वह मालूम हो जाय।

देखरेख—जहाँ पर साँड़ रहे, रात और दिन दोनो ही समय जब-जब वह चाहे उसे सुविधापूर्वक जल मिल सके। इसके लिये उसके रहने के स्थान में नाँदें अथवा हौज़ भर दिये जायँ। इसी प्रकार उसके निवास के स्थान में सेंधा नमक का एक ढेला अवश्य होना चाहिये। यह ऐसे स्थान पर हो कि जब साँड़ चाहे उसे चाट सके। साँड़ को नहला धुलाकर साफ रखना चाहिये। उसके नित्य खरहरा हो तो अच्छा है। इससे वह शांत और प्रसन्न रहता है। गर्मी में न नहलावें नहीं तो उसके गठिया हो जाने की आशंका है।

अच्छे साँड़ के लक्षण—ऊँचे कन्धे एवं सीधी, लम्बी तथा

मोटी पूँछ, कमर और कंधे सीधे, सींगों की नोक चिकनी, तीक्ष्ण दाँत होना आदि अच्छे साँड़ के लक्षण है। जिस साँड़ के तालू, ओठ व मुँह काले रंग के हों, और सींग एवं खुर खुरदरे हों, देखने में सिंह की आकृति का हो, रंग कौवे, गीध या चूहे के समान हो, जिसकी वृद्धि रुक गई हो, काना या खोढ़ा हो य दृष्टिदोष हो, नेत्र घूमते हों और पैर बराबर न पड़ते हों, उसे खराब साँड़ समझना चाहिये। वायु पुराण और वृहतसंहिता में इस विषय पर काफी विस्तार से कहा गया है।

कृत्रिम गर्भाधान—पशुओं के कृत्रिम गर्भाधान से तात्पर्य उस वैज्ञानिक प्रणालो से है जिसके द्वारा बिना साँड़ से मिले हुए मादा पशु गाभिन हो जाते हैं। इसमें नर-पशुओं से वीर्य लेकर मादा पशुओं की जननेन्द्रिय में पिचकारी के माध्यम से डाल दिया जाता है और वे गर्भित हो जाते हैं। इस वैज्ञानिक प्रणाली से उत्पन्न बच्चे प्राकृतिक ढंग से उत्पन्न बच्चों के समान ही सुन्दर, शक्तिशाली और तेज होते हैं।

विशेषज्ञों का मत है कि प्राकृतिक ढंग से १०० गायों पर कम से कम एक साँड़ की आवश्यकता होती ह। इस नवीन वैज्ञानिक प्रणाली से एक बार लिये हुये वीर्य से १० गायें गाभिन हो सकती हैं और इस प्रकार प्रतिवर्ष एक साँड़ से एक हजार तक गायें गाभिन की जा सकती हैं और १० साँड़ों के स्थान पर एक ही साँड़ पर्याप्त होगा। अतएव इस ढंग के कम साँड़ों से अधिक कार्य ही संभव न होगा वरन् चारे आदि की भी काफी बचत होगी। मादा पशुओं के पिचकारी द्वारा वीर्य डाले जाने से पूर्व उसकी शुद्धता की भली भांति परीक्षा भी कराली जाती है। जिससे कि वीर्य की अशुद्धता के कारण न तो गर्भपात आदि की आशंका रहती है और न जननेन्द्रिय के द्वारा फैलनेवाले रोगों का भय। छोटे पशु बहुधा बड़े साँड़ों से गाभिन ही नहीं होते और होते भी हैं तो ब्याने के समय बड़ा कष्ट होता है। इसी प्रकार चोट आदि खाये हुये मादा पशु भी प्राकृतिक ढंग से गाभिन नहीं होते और बेकार से हो जाते हैं। इस प्रणाली से उक्त दोनो प्रकार के मादा पशुओं के उत्तम वंश के बड़े से बड़े साँड़ का

वीर्य देकर उन्नत किस्म के बच्चे पैदा किये जा सकते हैं। प्रायः गाय-भैंसों के बाँझपन का रोग हो जाया करता है अथवा वे गर्म ही नहीं होतीं। कृत्रिम गर्भाधान-केन्द्रों में इन सबकी चिकित्सा की जाती है और अच्छे होने पर गर्भाधान किया जाता है। प्रत्येक पशुपालक चाहता है कि वह अपनी गाय और भैंस को किसी अत्यंत उन्नत नस्ल के साँड़ से गाभिन कराये परंतु उसके न मिलने पर वह पशु को सामान्य साँड़ से मिलाने के लिए बाध्य हो जाता है। किंतु इस प्रणाली से वीर्य काफी समय तक सुरक्षित रखा जाता है और दूर-दूर तक भेजा जा सकता है। *

कृत्रिम गर्भाधान प्रक्रिया—सभी राज्यों की सरकारों द्वारा स्थान-स्थान पर कृत्रिम गर्भाधान-केन्द्रों की स्थापना की जा रही है। इन केन्द्रों पर बहुत ही उन्नत जाति के निरोग, स्वस्थ एवं परीक्षित साँड़ रखे जाते हैं। उनके वंश की जाँच करके यह निश्चय कर लिया जाता है कि उनका पिता एक उन्नत जाति का था और माँ अत्यधिक दुधार थी। इस कार्य के लिए ऐसे ही साँड़ों को उक्त केन्द्रों पर भेजा जाता है। उक्त कार्य के लिये पाले जानेवाले साँड़ों के अण्डकोष में से पिचकारी द्वारा प्रति सप्ताह एक नियत दिन वीर्य खींचकर निकाला जाता है। इसके पश्चात् सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा वीर्य की शुद्धता की जाँच कर ली जाती है। इस निकले हुए वीर्य में अन्डे का पतला रस मिलाकर पतला बनाया जाता है। इसके बाद उसे रेफ्रीजरेटर में या बरफ के साथ रखा जाता है। इस वीर्य

---

* एक बार में लिया हुआ वीर्य ३-४ दिन तक रेफ्रीजरेटर में रखने से सुरक्षित रहता है। इस प्रकार वीर्य रेल और वायुयान द्वारा एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र को ही नहीं वरन् एक देश से दूसरे देश को भी भेजा जा सकता है। उत्तर प्रदेशीय सरकार पशुओं का वीर्य और अधिक समय तक सुरक्षित रखने के संबंध में खोज करने के निमित्त लाखों रुपये खर्च कर रही है और 'ब्लड बैंक' के समान ही कृत्रिम गर्भाधान के लिए "वीर्य बैंक" की स्थापना करने जा रही है।

को उचित मात्रा में ऋतुमती, उत्तम, नीरोग गाय की जननेन्द्रिय में पिचकारी से गर्भाशय में पहुँचा दिया जाता है और गाय गाभिन हो जाती है।

गर्भाधान का समय—प्राकृतिक गर्भाधान के समान ही इस प्रणाली में भी मादा के ऋतुमती होने (गर्म होने) पर ही गर्भ ठहरता है। भिन्न-भिन्न पशु अलग-अलग समय पर गर्म होते हैं। यदि एक बार गर्भाधान न हुआ तो फिर कब गर्म होंगे, यह समय भी प्रत्येक पशु का अलग-अलग होता है। इसी प्रकार एक बार गर्म होने पर कितने समय तक पशु गर्म रहेगा यह भी गाय, घोड़ी, बकरी आदि में समान नहीं होता। इस समय के सम्बन्ध में हमने 'गर्भाधान से ब्याने तक' शीर्षक अध्याय में विस्तार के साथ प्रकाश डाला है। 'ज्ञातव्य विषय' नामक अध्याय में भी 'पशुओं' के गर्म होने के समय की तालिका दी गई है। पशुपालकों को इससे लाभ उठाना चाहिए और पशु के गर्म होते ही उसे शीघ्र से शीघ्र गर्भाधान केन्द्र * ले लाना चाहिए। देर करने पर कहीं ऐसा न हो कि पशु के गर्म रहने का समय समाप्त हो जाय।

———

* हम यहाँ पर उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अब तक खोले गये केन्द्रों की सूची पशुपालकों की सुविधा के लिए दे रहे हैं। स्मरण रहे कि यह केन्द्र बराबर बढ़ते जा रहे हैं और अन्य राज्य सरकारें भी इन केन्द्रों की स्थापना कर रही हैं। तो भी यह सूची पशुपालकों के लिए लाभकारी होगी—

अलीगढ़—(१) केन्द्रीय दुग्धशाला (२) पशुचिकित्सालय।

आगरा—(१) बलवन्त राजपूत कालेज (२) फीरोजाबाद गौशाला।

इटावा—(१) पशु चिकित्सालय, महेवा (२) पशुचिकित्सालय, औरय्या (३) पशु चिकित्सालय, इटावा।

इलाहाबाद—प्रयाग कृषि संस्था, नैनी।

कानपुर—(१) कानपुर गौशाला सोसायटी, भौंती (२) पशु चिकित्सालय, चुन्नीगंज।

गर्भाधान से ब्याने तक

पशु के गाभिन होने से ब्याने तक की मुख्य-मुख्य बातों की जानकारी प्रत्येक पशुपालक के लिए अत्यन्त आवश्यक है। उनके ऋतुमती होने के लक्षण, गर्भाधान करने की आयु, गर्भाधान, गर्भ के लक्षण और काल, गर्भवती का आहार और परिचर्या तथा ब्याने के समय की विशेष बातें ऐसे विषय हैं जिनके न जानने के कारण प्रायः पशु से ही हाथ धोना पड़ता है।

ऋतुमती के लक्षण—जब पशु का गर्भाधारण करने का समय

गाजीपुर—पशु चिकित्सालय।

झाँसी—(१) राजकीय यांत्रिक फार्म, भरारी, (२) जिला पशु-चिकित्सालय।

जौनपुर—श्री गौशाला। जालौन—पशु चिकित्सालय, उरई।

देवरिया—(१) जिला पशु चिकित्सालय, (२) बरहज।

नैनीताल—(१) पशु चिकित्सालय, हलद्वानी; (२) उपनवेशन दुग्धशाला, नगला।

प्रतापगढ़—भदरी स्टेट फार्म, बेती। बस्ती—पशु चिकित्सालय।

बनारस—(१) राजकीय यांत्रिक फार्म, आराजी लाइन्स, (२) काशी विश्वविद्यालय।

बाराबंकी—राजकीय यांत्रिक फार्म, निबलट।

मेरठ—(१) पशुचिकित्सालय, गाजियाबाद, (२) जिला पशुचिकित्सालय, (३) उपनवेशन दुग्धशाला, हस्तिनापुर; (४) राजकीय यांत्रिक फार्म, बाबूगढ़।

मथुरा—(१) राजकीय यांत्रिक फार्म, माधुरी कुण्ड, (२) फ्री विलेज स्कीम, छाता।

होता है तो उसमें थोड़ी-थोड़ी देर में मलमूत्र त्याग करना, ऊँचे स्वर से रंभाना (चिल्लाना), आहार और जल त्याग देना, पूँछ हिलाना, दूध न देना, मूत्र-द्वार में लालिमा आ जाना और उससे श्वेत तरल स्राव आना, किसी अन्य मादा पशु के निकट आने पर उस पर चढ़ने का प्रयत्न करना और बाँधी जाने वाली रस्सी तुड़ाना आदि ऐसे लक्षण हैं जो प्रायः सभी मादा पशुओं में मिलते हैं। पशुओं की ऐसी दशा कुछ ही घण्टों के लिये होती है। ऐसा भी देखा जाता है कि कोई-कोई गाय आदि पशु जल्दी-जल्दी मलमूत्र त्याग करने और जल्दी २ दुम हिलाने के अतिरिक्त अन्य कोई लक्षण नहीं प्रगट करते।[१] विभिन्न पशुओं के ऋतुमती रहने का समय और गर्भ न धारण करने पर पुनः गर्भ होने का समय अलग-अलग होता है।[२]

रायबरेली—जिला पशु चिकित्सालय।

लखनऊ—(१) राजकीय दुग्धशाला, भद्रुक (२) बक्शी का तालाब।

सीतापुर—(१) राजकीय यांत्रिक फार्म, नीलगाँव, (२) जिला पशु-चिकित्सालय।

सुल्तानपुर—जिला पशु-चिकित्सालय।

१—इधर हाल ही में पाश्चात्य विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि ऋतुमती होने के साथ तुरंत ही साँड़ से संयोग होने पर 'मादा' और एक या दो दिन बाद संयोग होने पर 'नर' पशु का जन्म होता है।

२—पशुओं के गर्भ रहने का समय, ब्याने के बाद गर्भ होने का समय और गाभिन न होने पर पुनः गर्भ होने के समय के विषय में हमने 'ज्ञातव्य विषय' नामक अध्याय में एक तालिका दी है। स्मरण रहे कि तालिका में दिये समयों के पूर्व ही पशु के ऋतुमती होने पर गर्भाधान कराना ठीक नहीं होता। इस समय गर्भाधान बहुत शिथिल होता है। अतएव नियत समय से

आयु—भिन्न-भिन्न पशुओं की गर्भ धारण करने की आयु भिन्न-भिन्न होती है। यह बहुत कुछ पशु के पालन-पोषण पर निर्भर करती है। प्रचुर पुष्टिकारक आहार मिलने पर शीघ्र ही पशु गर्भधारण कर लेता है और दुर्बल होने पर अधिक समय लग जाया करता है। गाय और भैंस आदि दो से तीन वर्ष, घोड़ी एक से दो वर्ष, भेड़-बकरी आठ महीने से एक वर्ष, कुत्ता सात से दस महीने में युवा होकर गर्भ धारण करते हैं। पालन-पोषण अधिक अच्छा होने पर इस समय में कुछ जल्दी और इसके अभाव में कुछ देर हो जाया करती है।

गर्भाधान कराना—मादा पशु के गर्भ होने पर उसे साँड़ के साथ किसी ऐसे स्थान में छोड़ देने चाहिये जहाँ वे अपनी इच्छा और प्रवृत्ति के अनुसार संयुक्त हो सकें। कोई-कोई मादा पशु पहली बार गर्भ धारण करने का समय आने पर साँड़ के निकट जाने में डरते हैं। ऐसी परिस्थिति में मादा पशु को दो खूँटे गाड़कर उनके मध्य में दो रस्सियों से बाँध देना चाहिये। यदि वह बैठने का प्रयत्न करें तो आगे दो बल्लियाँ लगाकर उसे खड़ा रख सकते हैं। इसका एक ढंग यह भी है कि उसे घुटनों से ऊपर पानी में ले जाय और वहीं पर साँड़ से उसका संयोग करावें। बताया जा चुका है कि भेड़ों के गाभिन होने का उचित समय अप्रैल से जून तक है। ऐसे बच्चे सितम्बर से नवम्बर तक पैदा होते हैं और स्वस्थ होते हैं। इस समय रात को बाड़े में नर भेड़ को उसकी छाती में कोई कच्चा रंग लगा दें जिससे वह जिस भेड़ से मिले वह मालूम की जा सके।

गर्भिणी के लक्षण—गर्भ होने पर पशु के शरीर में एक चमक और चिकनाहट आ जाती है। उनकी जननेन्द्रिय से एक प्रकार का पीलिमा

पूर्व पशु के गर्भ होने पर उसे कतीरा जैसी ठंडी वस्तु खिलाकर शांत कर देना चाहिये। किन्तु ध्यान रहे कि बार-बार ऐसा करने पर पशु बाँझ हो जाता है। अस्तु, दुबारा गर्भ होने पर उसे साँड़ के पास अवश्य ले जायँ।

लिये हुए स्राव निकलने लगता है। कुछ समय बीतने पर पशु के शरीर में एक भारीपन आ जाता है जिसे देखकर गर्भ का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। गाय-भैंस आदि के चार-पाँच महीने में ही पार्श्व और थनों को अँगुलियों से स्पर्श करने से ही गर्भ मालूम पड़ जाता है। प्रायः ऐसा भी देखा जाता है कि कुछ पशु ६--७ माह का गर्भ होते हुए भी ऋतुमती के समान अन्य पशुओं पर चढ़ते और चिल्लाते हैं। ऐसे समय बड़ी सतर्कता की आवश्यकता है क्योंकि साँड़ से संयोग हो जाने से गर्भपात हो जाने की आशंका रहती है।

गर्भ रहने का समय—हमारे यहाँ गाय-भैंस आदि पशुओं के गर्भ धारण करने के बाद २७५ से २८७ दिनों में प्रसव होता है। इसी प्रकार घोड़ी का ३६५ से ४४५ दिन, भेड़-बकरी का १४६ से १५१ दिन, ऊँटिनी का ४५ सप्ताह और हथिनी का समय लगभग दो वर्ष है। उक्त दिये गये समय में कभी-कभी ८-१० दिन का अन्तर भी पड़ सकता है।

गर्भ के समय का आहार—गर्भ धारण के पूर्व से ही पशु को स्वास्थ्यकर पुष्टिकारक एवं उत्तम आहार देना चाहिये। इस सम्बंध में यह ध्यान अवश्य रखता चाहिये कि इसकी मात्रा बहुत अधिक न होने पावे जिससे कि पशु के चर्बी अधिक बढ़ जाय। अधिक चर्बी बढ़ जाने से गर्भाशय संकुचित हो जाता है और फलस्वरूप बच्चा छोटा उत्पन्न होता है। कभी-कभी इससे गर्भपात हो जाया करता है।

गर्भवती के प्रति सावधानी—गर्भ धारण करने के पश्चात् पशु में विशेष रूप से मृदुता आ जाती है। कभी-कभी उनके उछलने से, अन्य पशु से लड़ने, तेज़ दौड़ने, साँड़ के साथ दुबारा मिलने; और खली जैसे उत्तेजक पदार्थों के खाने से गर्भपात हो जाने की आशंका रहती है। अस्तु इन चीज़ों से विशेष रूप से सतर्क रहना चाहिये। उन्हें किसी एकान्त निरापद स्थान में नहला धुलाकर साफ रखना चाहिये। चर्बी अधिक न बढ़ने पावे, इसलिये उनसे थोड़ा श्रम अवश्य ले लेना चाहिये। यह श्रम

व्यायाम के रूप में भी लिया जा सकता है। यदि गर्भपात हो जाय तो भ्रूण को चुपचाप ले जाकर अलग गाड़ देना चाहिये और पशु की उचित दवादारू का प्रबंध कर देना चाहिये*। यदि एक बार गर्भपात हो जाय तो मादा पशु को शीघ्र ही किसी साँड़ से संयुक्त न होने देना चाहिये।

प्रसव के समय परिचर्या—प्रसव का समय निकट आने पर पशु का पृष्ठ भाग भारी हो जाता है। पाकस्थली छाती की ओर झुक जाती है। मूत्र स्थान और गुह्य द्वार में अनवरत उत्तेजना परिलक्षित होती है। पशु जल्दी-जल्दी मलमूत्र त्याग करने और दुम हिलाने लगता है। प्रसव-द्वार में सूजन अधिक बढ़ जाती है और पीले रंग का स्राव जो अब तक निकलता रहता है, बंद हो जाता है। पशु के थन बड़े हो जाते हैं। कभी-कभी उनमें दूध भर जाता है और दुग्धवाहिनी शिरायें मोटी और विस्तृत हो जाती हैं। यदि दुग्धवाहिनी शिरायें अधिक फूल जाँय तो नित्य प्रातः-सायं दूध निकाल देना चाहिये अन्यथा दूध जम जाता है। इसके परिणाम-स्वरूप पशु को ज्वर भी हो आता है जिसका प्रभाव गर्भ पर पड़ता है। इससे प्रायः पशुओं के दो थन मारे जाते हैं और कभी-कभी उनकी मृत्यु तक हो जाती है। पशु को सूखे एवं ठंढ से रहित स्थान में रखना चाहिये और उसे स्नान न कराना चाहिये अन्यथा सर्दी लग जाने का भय रहता है।

प्रसव का समय अधिक निकट आने पर प्रसव-वेदना बढ़ जाती है और पशु की आँखें उज्ज्वल हो जाती हैं। वह एक ओर टकटकी लगाकर देखने लगता है। वह वेदना के कारण अशांत होकर उठने-बैठने लगता है। प्रसव होने के कई दिन पूर्व से ही पशु को बाहर चराने

---

*गर्भपात एक संक्रामक रोग है। चिकित्सा और निदान के भाग में इसका सविस्तार वर्णन किया गया है। इसकी चिकित्सा और व्यवस्था उसी में दी हुई है। अतएव गर्भपात होने पर उसी के अनुसार व्यवस्था करें। इसमे विशेष सतर्कता की आवश्यकता है अन्याथ रोग बड़े वेग से फैलता है।

न ले जाना चाहिये। बाहर अनुपयुक्त स्थान में प्रसव होने से माँ और शिशु दोनो की मृत्यु की सम्भावना रहती है। उसे शांति के साथ एकान्त गौशाला में ही रखना उपयुक्त है। गोशाला में पुआल और सूखी घास बिछा देना चाहिये।

प्रसव होने के कुछ पूर्व ही गाय के पिछले अंग, विशेष कर प्रसव-द्वार पर नारियल का तेल डाल देना चाहिये और उसे बाँस की पत्ती अथवा कच्ची घास खिलानी चाहिये।

प्रसव होना प्रारंभ होते ही प्रसवद्वार से जल निकलना प्रारंभ हो जाता है। पशु लेट जाता है और थोड़ी देर में बायीं करवट हो जाता है। सबसे पूर्व बच्चे के अगले पैर बाहर आते हैं। इसके पश्चात् पैरों के घुटनों से सटा हुआ बच्चे का सिर दिखाई पड़ता है। और कुछ ही समय के बाद बच्चे का पूरा शरीर बाहर आ जाता है। हमने यहाँ प्रसव की उचित और प्राकृतिक क्रिया दी है। यदि इसके विपरीत होता दिखाई दे तो किसी योग्य चिकित्सक अथवा कम्पाउन्डर को बुला लें। यदि प्रसव में विलम्ब हो और पीड़ा बढ़कर एकाएक कम पड़ जाय तो २० से ८० ग्रेन कुनैन और चित्रक की जड़ एक-एक छटाँक जल के साथ पीसकर खिलावें। इससे प्रसव शीघ्र ही हो जाता है। यदि प्रसव-पीड़ा सप्ताह भर तक रहे तो भूसी के साथ तीसी का तेल या एप्सम साल्ट देवें। इससे भी प्रसव में शीघ्रता होती है। प्रसवकाल के समय सर्दी यदि अधिक हो तो माता और बच्चे दोनो को ही सेंक दें।

बच्चों का पालन

(अ) माँ से अलग (ब) माँ के साथ

पशुपालकों की एक प्रचलित धारणा है कि माता से अलग रखकर बच्चे को नहीं पाला जा सकता। माता की मृत्यु के बाद तो वे प्रायः

बच्चे के जीवन से निराश ही हो जाते हैं किंतु प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि माँ से अलग रहकर भी बच्चे भली भाँति एवं स्वस्थ रह सकते हैं। इस रीति से उन लोगों के लिये, जो दूध आदि का आँकड़ा रखना चाहते हैं, पूरे दूध का व बच्चों के स्वास्थ्य आदि का सही ब्यौरा प्राप्त करना भी सरल है। इससे पशु की दुधारू-शक्ति का अनुमान सहज ही हो जाता है और बच्चे को अच्छी देख-रेख के साथ यह भी ज्ञात हो जाता है कि वे आर्थिक रूप से कहाँ तक लाभ-प्रद हैं। हम यहाँ इस प्रणाली पर प्रकाश डालेंगे।

मादा पशु को ब्याने से एक मास पूर्व ही एकान्त कोठरी में रख दिया जाता है और उसकी भली-भाँति देख-रेख करने के लिए एक व्यक्ति नियुक्त होता है। गाय अपना बच्चा न देख पाये, इसलिए बोरे में उसका मुँह बंद कर दिया जाता है। ब्याने के साथ ही बच्चे को तुरंत वहाँ से हटा दिया जाता है और उसके बाद उसकी आँखें खोली जाती हैं। हटाने के बाद बच्चे को भूसे अथवा किसी टाट पर रखकर टाट या कपड़े से बिना पानी लगाये खूब साफ किया जाता है। बढ़ी हुई नाभि आधा इंच छोड़कर शेष काट दी जाती है और ५-६ रोज तक उस स्थान पर टिंचर आयोडीन लगा देते हैं जिससे कि वह स्थान पकने न पावे। घंटे डेढ़ घंटे बाद जब वह कुछ चलने-फिरने योग्य हो जाता है तो उसे आध पौंड कीला (Colostrum) पिला देते हैं। यदि यह न हो तो ४-५ दिन तक एक औंस अलसी का तेल भी दिया जा सकता है। इससे बच्चे का पेट साफ हो जाता है।

ब्याने के कुछ समय बाद ही बच्चे का भार लिया जाता है और उसी के अनुसार उसके आहार की मात्रा निर्धारित की जाती है। ४० पौंड से कम भार वाले बच्चे को ५ से ५॥ पौंड तक दूध दिया जाना चाहिये। इसी प्रकार ४० से ४५ पौंड के बच्चे को ६ से ६॥ पौंड, ४५ से ५० पौंड वाले को ६॥ से ७ पौंड, ५० से ५५ पौंड के बच्चे को ७ से ७॥ पौंड और इससे अधिक भार वाले बच्चे को ८ पौंड दूध देना चाहिए। दूध की

यह मात्रा बच्चे की आयु के साथ ही बढ़ती जाती है। यदि उसका स्वास्थ्य और पाचन-शक्ति अच्छी हो तो प्रति सप्ताह दूध की मात्रा आधा पौंड तक बढ़ाई जा सकती है। कुछ समय बाद उसे अन्य चारे भी दिये जा सकते हैं।* आरंभ में बछड़े को प्रातः ७॥ बजे मध्याह्न में २॥ बजे और रात्रि में ८ बजे, तीन बार में दूध देना चाहिए। एक माह बाद यदि वह स्वस्थ हो तो दो ही बार में दिया जा सकता है। बछड़े को दूध देते समय इसका अवश्य ध्यान रहे कि दूध का तापक्रम शरीर के ताप-क्रम के समान ही होना चाहिए अन्यथा अनेक उपद्रव खड़े हो जाते हैं। कई गायों के मिले हुए दूध को देना अच्छा रहता है। दूध पिलाने के बाद थोड़ा सा नमक उनके मुँह में दे देना चाहिए।

एक बच्चे से दूसरे की दूरी ७-८ फीट रखनी चाहिए जिससे वे एक दूसरे के शरीर को चाट न सकें। बच्चों को आयुभेद से दो भागों में बाँट देना चाहिये (१) २॥ माह से कम और (२) २॥ से १० माह तक। इसके पश्चात् इनकी प्रकृति, आयु, स्वास्थ्य, पाचन और शक्ति आदि को ध्यान में रखते हुए आहार देना चाहिये। बड़े होने पर उनके पास नमक के ढेले रख देने चाहिए। इसके साथ ही स्वच्छता रखने और व्यायाम के लिए थोड़ा दौड़ाने की अत्यधिक आवश्यकता होती है।

दुग्धशालाओं के ही लिये नहीं अपितु सामान्य पशुपालकों के लिये भी यह ढंग अत्यन्त उपयोगी है। यदि उन्हें मा से अलग न भी पाला जाय तब भी इसी रीति से उनका पालन-पोषण होना चाहिए।

———

* बछड़े के आहार के संबंध में 'पशुओं का आहार' नामक अध्याय में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। उसी के अनुसार बाद में मात्रा कम करके अन्य चीजें दी जा सकती हैं।

बधिया करना

धर्म-शास्त्रों में किसी पशु को बधिया करना पाप माना गया है। और इसीलिये हमारे देश में लोग प्रायः अपने घर के बछड़े को स्वयं बधिया नहीं करवाते हैं। किन्तु 'सर्वारम्भा हि दोषेण' की उक्ति के अनुसार कृषि के निमित्त बधिया बैल की नितांत उपयोगिता को भी ग्रहण करना चाहिए।

हमारे देश में बधिया करने की जो पुरानी रीति प्रचलित है वह अत्यन्त घातक व क्रूरतापूर्ण है। एक ढंग यह है कि अण्डकोष को हँसिया या अन्य पैने औजार से काट देते हैं और घाव का रक्त बन्द करने के लिये कोई दवा लगा देते हैं। प्रायः ऐसा भी होता है कि उचित दवा के अभाव में कीड़े पड़ जाते हैं। कहीं-कहीं एक दूसरी रीति काम में लाई जाती है। इसमें बछड़े के अण्डकोष को एक पत्थर पर रखकर दूसरे पत्थर से कूट देते हैं। इससे कुछ समय में ही भयंकर सूजन आ जाती है और प्रायः पशु की मृत्यु तक हो जाती है। इस उन्नतिशील वैज्ञानिक युग में इस प्रकार के निर्दयतापूर्ण उपायों को काम में लाना बड़े दुःख की बात है। इधर 'बॉर्डिको कैस्ट्रेटर' नामक एक औजार का आविष्कार हुआ है जिसके द्वारा बैल, भैंसा, घोड़े, बकरे, भेंड़, ऊँट और कुत्ते सभी को बिना कष्ट पहुँचाये हुए बधिया किया जा सकता है। इस प्रणाली से घाव नहीं होता, रक्त नहीं बहता और औषधि आदि का भी प्रबन्ध नहीं करना पड़ता। प्रत्येक पशु को हर ऋतु में केवल दो मिनट में बिना किसी कष्ट के बधिया किया जा सकता है।

इस बोर्डिको कैस्ट्रेटर की आकृति एक सँड़सी सी होती है और इससे अंडकोष के ऊपर की कुछ वीर्यवाहिनी नसों को केवल दो बार दबा देने से ही जानवर बधिया हो जाता है। पशुपालकों को चाहिए कि इस नई प्रणाली के द्वारा ही पशुओं को बधिया करावें। बधिया करने का

पेशा करनेवालों को भी यही प्रणाली अपनानी चाहिए। इधर स्थान-स्थान पर पशु-चिकित्सालय खुल गये हैं, जहाँ पर बिना किसी मूल्य के पशुओं को बधिया किया जाता है।

पशु-उद्योग

(अ) दुग्ध उद्योग (ब) ऊन चमड़ा हड्डी मांस आदि

हमारे देश में आजकल दुग्ध-व्यवसाय धीरे-धीरे उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है। दूध, घी की कमी दूर करने के लिए स्थान-स्थान पर डेयरी फार्म खुल रहे हैं अथवा खोलने की योजना बन रही है। इन डेयरी फार्मों का उद्देश्य है दूध, घी और मक्खन आदि का अधिक उत्पादन और उनसे अधिकतम लाभ। इन दिनों हमारे यहाँ तीन प्रकार की दुग्धशालायें हैं:—(१) फौजी डेयरीफार्म जो गाय-भैंस पालकर फौजियों के लिये दुग्ध-पदार्थों की सप्लाई करते हैं। (२) प्राइवेट डेयरीफार्म जो जनता में दूध मक्खन देने के लिये पशु पालते हैं और (३) डेयरीवाले वे लोग जो पशु नहीं पालते वरन् पशुपालकों से दूध लेकर उसी रूप में या उसके अन्य पदार्थ बनाकर बेचते हैं या पशुपालक को वापस कर देते हैं। यहाँ पर हमारा संबंध केवल अंतिम दो से है। प्रायः सामान्य पशुपालक न तो पशुओं की ठीक से देखभाल ही कर पाता है और न दूध आदि की समुचित व्यवस्था और बिक्री। हम इस अध्याय में सामान्य पशुपालक के लाभार्थ नियोजन, दोहन उत्पादन, रक्षा और वितरण आदि डेयरी से संबंधित महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डालेंगे।

दुग्धशाला की संक्षिप्त रूपरेखा*—एक छोटी और सामान्य दुग्धशाला खोलने के लिये ५० के लगभग दुधार और उन्नत नस्ल के पशु

---

* डेयरी की यह संक्षिप्त रूपरेखा हम एक अत्यंत अनुभवी डेयरी विशेषज्ञ के प्लान के आधार पर दे रहे हैं।

होने चाहिये। इनमें ३० गायें और २० भैंसें हों। इतने पशुओं के लिये लगभग ५० एकड़ भूमि की आवश्यकता होगी। उक्त भूमि के चारो ओर सिंचाई के हेतु कुँये या नहर का साधन उपलब्ध हो। भूमि ऐसी हो कि उसमें फसलें* भली भाँति पैदा की जा सकें। इस भूमि में २५ एकड़ भूमि चारे की फसलें तैयार करने के काम में लाई जाय। १० एकड़ चरागाह के निमित्त सुरक्षित रहे। ५ एकड़ उद्यान और सुरक्षित फसलों के स्टोर के लिये हो और १० एकड़ में इमारत, सड़कें और बाड़े तैयार किये जाँय।

५० दुधार पशुओं से औसतन साढ़े चार पाँच मन दूध प्रतिदिन मिलने की आशा की जाती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि ६६ प्रतिशत पशु वर्ष भर दूध देते रहें और प्रत्येक गाय और भैंस से मिलने वाले दूध का औसत नित्य ५-६ सेर हो। यदि पशु उन्नत नस्लों के हों और उन्हें समुचित आहार मिलने के साथ-साथ उनकी देखरेख भी किसी सुयोग्य एवं अनुभवी व्यक्ति के द्वारा हो तो इतनी आशा करना उचित ही है। दुग्धशाला शहर से इतने निकट होनी चाहिये कि वहाँ से दूध तांगे द्वारा बाहर भेजा जा सके। शहर में दुग्ध-वितरण के लिये ३-४ केन्द्र निर्धारित कर लेने चाहिये। दुग्धशालाओं के लिये भूमि दिलाने में सरकार भी यथाशक्ति सहायता करती है।

दोहन और दुग्ध में स्वच्छता—दूध को दुहने में विशेष निपुणता की आवश्यकता होती है। इसमें सर्वाधिक स्वच्छता का ध्यान रखना पड़ता है। दूध को, दिखाई पड़नेवाले अथवा अत्यन्त सूक्ष्म कीटाणुओं से पूर्णतया मुक्त होना चाहिये। उसमें बाहरी गन्दगी, रोग-कीटाणु या अन्य ऐसे तत्व न मिलने पावें जो हानिकारक हों। अतएव इसके दोहन, सुरक्षा और वितरण में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। सबसे पहले

---

* स्थानाभाव के कारण हम चारे की फसलों का विशेष विवरण नहीं दे रहे हैं। विशेष जानकारी के लिए देखें—एन० सी० दास गुप्ता रिसर्च आफिसर ढोर प्रजनन अनुसंधान योजना, भारारी (झाँसी) लिखित 'पशुओं के लिये हरा चारा'। पशुपालन विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित। विना मूल्य।

दुधार पशु स्वच्छ एवं स्वस्थ हो। वह सर्वप्रकार के संक्रामक रोगों से मुक्त हो। पशु को गर्मी में नित्य एक बार और जाड़े में प्रति सप्ताह नहला दें और खरहरा कर दें। पशु को नित्य किसी कपड़े से पोंछकर साफ कर दें और थनों को पोटाश परमेंगनेट के घोल से धोकर पोछ दें। थनों के निकट और पेट के बाल सदैव साफ रखने चाहिये। दूसरे दोहक साफ-सुथरा हो। उसके वस्त्र साफ और नाखून कटे हुए हों। दुहने के पहले दोहक को अपने हाथ गर्म पानी से धोकर साफ कर लेने चाहिये और उसे संक्रामक रोगों से मुक्त होना चाहिये। तीसरी वस्तु है बर्तनों की सफाई। कम चौड़े मुंहवाले बर्तन कभी साफ नहीं हो पाते, अतएव दुहने के लिये विशेष रूप से तैयार की गई गुम्मददार बाल्टी का प्रयोग करना चाहिये। क्योंकि साधारण बाल्टी का मुँह अधिक चौड़ा होने के कारण उसमें बाहरी कीटाणुओं और धूल के अधिक प्रवेश करने की आशंका रहती है। इस बाल्टी में एक ढक्कन सा रहता है जो बगल में कुछ खुला हुआ होता है। दूध की धार इसी भाग से बाल्टी में प्रवेश करती है। इतनी सावधानी बरतने पर भी इसमें बाल या धूलिकण आ जाते हैं। अतएव इसे महीन कपड़े से छान लेना चाहिए। दूध को उसी हालत में अधिक समय तक रखना ठीक नहीं है, अस्तु उसे शीघ्रातिशीघ्र ठंढा कर लेना चाहिये। इसे या तो मशीन में रखकर ठंढा किया जा सकता है या पानी के भरे कुण्डों में रखकर। हम इसके सम्बन्ध में एक अलग अध्याय में प्रकाश डालेंगे। इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी के निमित्त अपने प्रदेश के डेयरी डेवलपमेंट अफसर से सम्पर्क स्थापित करना चाहिये।❋

दोहन-कला—गाय-भैंस के दुहने में चतुरता और अनुभव दोनों की आवश्यकता है। एक चतुर दोहक अधिक दूध प्राप्त करने के साथ-साथ पशु के आराम एवं सुविधा का भी ध्यान रखता है। दुहने का कार्य चुप-

---

❋ दूध ठंढा किये जाने पर भी अधिक समय तक न रखना चाहिये। इसे सायकिल या वान द्वारा लाया जाकर सुविधानुसार सील लगी हुई बाल्टियों से किसी टोटी की सहायता से खुला हुआ या सील लगी हुई बोतलों में बाँटा जा सकता है।

चाप, नर्मी और फुर्ती के साथ होना चाहिये। दुहते समय प्रत्येक थन से दो तीन छींटें भूमि पर गिरा देनी चाहिये जिससे दूध की नली में होनेवाले कीटाणु निकल जायँ और दूध नष्ट होने से बच जाय। दूध दुहने का समय नित्यप्रति एक ही होना चाहिये। इसे बदलते रहते पर दूध बनने में कठिनाई होती है और अधिक समय तक ऐसा करने से दूध की मात्रा भी कम पड़ जाती है। प्रतिदिन के दो बार दुहने में १२ घंटे का अन्तर होना चाहिये।

दुहते समय थनों को खींचना न चाहिये वरन् उनसे दूध निचोड़ना चाहिये। थनों को पूरी मुट्ठी में पकड़कर दुहना चाहिये और अँगूठे को ऊपर रखना चाहिये। इस रीति से दुग्धनलिकाओं में प्रत्येक स्थान पर समान रूप से दबाव पड़ता है। छोटे थनवाले पशुओं का दूध अँगूठे की पहली पोर और प्रथम दो अँगुलियों से पकड़कर थन की पूरी लम्बाई तक खींचकर निकालना चाहिये। दोनों थनों से एक के बाद दूसरी निकलनेवाली धार का निरन्तर प्रवाह होना चाहिये। ग्वाले प्राय: थन को चार अँगुलियों से पकड़कर अँगूठे को हथेली के भीतर मोड़कर थनों को खींचते हैं। यह ढंग बहुत ही बुरा है। इससे थन के ऊपरी भाग पर अँगूठे की गाँठ का अधिक और असम दबाव पड़ता है और फलस्वरूप दुग्धनलिका थन की जड़ के निकट मोटी हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त बड़ी डेयरियों में मिल्क-स्ट्रेनर्स का भी उपयोग होता है। इससे दूध बड़ी आसानी से दुह जाता है।

दूध का लेखा—प्रत्येक पशुपालक के लिये दूध का लेखा रखना अत्यन्त लाभप्रद है। पशु का आहार उसके दूध की मात्रा के अनुसार ही निश्चित करना चाहिये। जो व्यक्ति इस प्रकार का लेखा रखता है वही संतुलित एवं समुचित आहार दे सकता है और उपयुक्त साँड़ का चुनाव कर सकता है। इससे पशु के स्वास्थ्य का भी ज्ञान रहता है और अच्छे रिकार्ड वाले दुधार पशुओं का मूल्य भी अधिक मिलता है।

अर्थोपार्जन और व्यवस्था दोनों ही दृष्टियों से लेखा (रेकार्ड) रखना लाभप्रद और जरूरी है।

मादा पशुओं का स्वतः दूध पीना—कुछ गायों की ऐसी भी आदत देखी जाती है कि वे अपना दूध स्वयं पी लेती हैं। जब यह आदत बढ़ जाती है तो उन्हें अपने बच्चों से बिलकुल स्नेह नहीं रह जाता। गाँवों में प्रायः लोग ऐसी गायों के चेहरे पर एक तिकोनी (> इस आकार की) लकड़ी बाँध देते हैं। इसका अग्रिम भाग नुकीला होता है। जब वे दूध पीने का प्रयत्न करती हैं तो यह नुकीला भाग उनके थनों में लगता है और वे दूध नहीं पी पातीं किन्तु नोक के टूट जाने पर फिर पीने लगती हैं। इसका सरल उपाय यह है कि ४-५ इंच लम्बी बाँस की लकड़ियों की एक माला तैयार कर उसके गले में बाँध दी जाय। इससे वह अपनी गर्दन अधिक नहीं घुमा सकेगी। खाना खाने के बाद तुरंत उसे दुह लिया जाय। चारा खाने के समय और दुहने के बाद पशु दूध पीने का ही प्रयास करेगा। इन समयों में इस माला को हटा दिया जाय। दुहने के थोड़े समय बाद प्रातः चारा देने तक पुनः इसे पहना दिया जाय। फिर दुहने के बाद थोड़ी देर में इसे पहना दिया जाय। सम्भव है कि कुछ समय में पशु की यह आदत बिलकुल ही छूट जाय।

दूध की बिक्री—हमारे यहाँ मध्यमवर्ग एवं हलवाइयों के शोषण के फलस्वरूप गाँव के दुग्ध-उत्पादक को दूध का उचित मूल्य नहीं मिलता। वह बाजार तक सीधा दूध नहीं पहुँचा पाता। या तो वह व्यापारियों के हाथ दूध बेंच देता है या हलवाइयों के हाथ। यह लोग उस दूध को शहर ले जाकर अधिक लाभ उठाते हैं। इनका वर्णन हम अध्याय के प्रारंभ में ही कर चुके हैं। इस प्रकार उत्पादक और उपभोक्ता के बीच यह एक नई श्रेणी पायी जाती है। उचित लाभ न मिलने के कारण पशुपालक पशुओं की समुचित देखरेख भी नहीं कर पाता। उपरोक्त त्रुटियों के निवारण का एक ही मार्ग है--सहकारी दुग्ध-वितरण संघों की स्थापना।

उत्तर प्रदेश में बनारस, लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद और मीटर आदि शहरों में ऐसे संघ सफलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं।

दूध इकट्ठा करने के केन्द्र स्टेशनों या सड़कों के किनारे होते हैं। वहीं से संघ के कर्मचारी सुविधानुसार रेल, मोटर-वान या ताँगों द्वारा शहर लाकर दूध बेचते हैं। संघ के लोग दूध के आवश्यक तत्वों और उसकी विशुद्धता की जाँच करने के लिये प्रत्येक दुग्ध उत्पादक द्वारा लाई गई हर बाल्टी का नमूना एक शीशी में ले लेते हैं और बाद में, बड़े-बड़े बाल्टों में भरकर शहर पहुँचाते हैं। यह दूध मार्ग में किस प्रकार सुरक्षित और दोषरहित रहे, यह स्थान की दूरी पर निर्भर करता है। यदि दूरी कम है तो वैसे ही नहीं तो मोटर आदि के द्वारा लाया जाता है। ठंडा किया हुआ दूध बाँटते समय तक ठंडा रखने के लिये शीतगृह (Cold Storage) में रखा जाता है।

दूध को टिकाऊ बनाना—दूध के एक पूर्ण भोजन होने पर भी वह दोषों से पूर्णतया मुक्त नहीं है। इसका एक सबसे बड़ा दोष है कि यह अधिक समय तक ठहरता नहीं है। अतएव इसका विनिमय, व्यवहार, व्यवसाय अथवा जो कुछ भी करना हो शीघ्र हो कर लेना चाहिये। हम इसी अध्याय में दुग्ध एवं दोहन में स्वच्छता रखने पर प्रकाश डाल चुके हैं। दूध में अनेक प्रकार के अणूद्भिज होते हैं जो घड़ी में चारगुना और घंटे में सोलह गुना बढ़ते हैं। यदि कहे हुए ढंग से स्वच्छता बरती जाय तो २३ घंटे तक दूध नहीं बिगड़ता और न हानिकर ही होता है। हमारे देश में उष्णता, निर्धनता एवं स्वच्छता की कमी के कारण अन्य देशों की अपेक्षा दूध अधिक जल्दी बिगड़ जाता है। बाह्य साधनों के अभाव में दुग्ध-व्यवसाय प्रायः अलाभकर ही सिद्ध होता है। हम यहाँ पर दुग्ध को सुरक्षित रखने और रोगजनक कीटाणुओं से रहित करने की कुछ वैज्ञानिक विधियों पर प्रकाश डालेंगे।

स्टरलाइज्ड मिल्क—सुरक्षा के लिये एक ढंग यह है कि दूध को कम से कम २१२ डिग्री एफ० अर्थात् ब्वायलिंग प्वाइन्ट

(Boiling Point) तक वाष्प चाप यन्त्र (Steam Pressure) में रखकर कुछ घंटों तक उबालें। उबालने के बाद बर्तनों में रखते समय यह ध्यान रखा जाय कि उनमें वायु न भरने पावे। इस प्रकार तैयार करके भरा हुआ दूध वर्ष भर के बाद भी खोलने पर वैसा ही मिलेगा। इस ढंग से सुविधा के साथ-साथ अत्यधिक टिकाऊपन तो आ जाता है किन्तु दूध के अनेक कोमल, आरोग्यप्रद, पोषक और हितकारी तत्व नष्ट हो जाते हैं। गुणों के साथ ही स्वाद में भी परिवर्तन आ जाता है।

पैश्चुराइज्ड मिल्क—इस रीति के अनुसार १४० डिग्री एफ० ताप पर आधे घंटे तक, १४५ डि० एफ० पर १५ मिनट तक और १५५ डि० एफ० पर ५ मिनट तक दूध को भाप के द्वारा उबाला जाता है। इस प्रणाली से रोग के सामान्य कीटाणु या तो मर जाते हैं या अकर्मण्य हो जाते हैं। इसके बाद शीघ्र ही दूध को ठंडाकर देने से रोग के जीवाणु प्रायः नष्ट हो जाते हैं। इसलिये दूध को बर्फीली ५५डि० एफ० तक ठंडी जल की नालियों से बहाया जाता है और फिर तुरन्त शीतागार अर्थात् कोल्ड स्टोरेज या रेफ्रीजरेटर में या नमक के जल की कूँड़ी (ब्राइन वाटर) में रखते हैं। इसके बाद इसे रेफरीजरेटिंग कारों के द्वारा काफी दूर-दूर के स्थानों को भी पहुँचाया जा सकता है। दूध को दो-तीन घंटे से अधिक रखना हो तो यह प्रणाली सर्वश्रेष्ठ है। इससे दूध के गुणों, पोषकता और स्वाद में नाममात्र का ही अन्तर आता है। इसके लिये स्टीम ब्वायलर, पैश्चुरीकरण यन्त्र (Pastcurizer), कूलर और आइस प्लाण्ट, इंजन, पानी, मकान और स्वच्छता का होना आवश्यक है।

साधारणतया यदि दूध बाहर भेजना हो तो दूध की बंद बाल्टियों को उबलते हुए जल में डाल दिया जाय। जब दूध १६५ डि० एफ० की गर्मी को पहुँच जाय तो उसे इकट्ठाकर बंद कर दिया जाय। उसे वितरक केन्द्र को भेज दिया जाय, जहाँ इसे ४५ से ५० डिग्री एफ० तक ठंडा कर दिया जाय। विशेष जानकारी के लिये प्रदेश के डेयरी डेवलपमेंट अफसर से संपर्क स्थापित करना चाहिये।

दुग्ध पदार्थ—दूध एक शीघ्र खराब हो जानेवाला पदार्थ है। हम कह चुके हैं कि हमारे देश के अधिक तापक्रम, साधनों के अभाव और अस्वच्छ दशाओं में उत्पन्न होने के कारण इसे अधिक समय तक नहीं रखा जा सकता। दूसरे दूध की इतनी अधिक खपत भी नहीं होती। इन कारणों से दूध को अन्य पदार्थों के रूप में तैयार करने की आवश्यकता पड़ती है। हम यहाँ हमारे देश में तैयार होनेवाले कुछ दुग्ध-पदार्थों का वर्णन करेंगे।

पेऊस—(पीयूष) गाय के ब्याने के बाद दो-तीन दिन का दूध 'पेऊस' कहलाता है। इसे 'कठौस दुग्ध' भी कहते हैं। ऐसा दो सेर दूध लेकर उसमें दो सेर शुद्ध दूध मिला दें। फिर एक सेर शक्कर, दो तोला छोटी इलायची का चूर्ण और आधा तोला केशर मिलाकर चम्मच से भली भाँति चला देवें और प्रयोग में लावें।

घी—हमारे यहाँ घी ही एक ऐसा पदार्थ है जिसे अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इसमें 'ए' और 'डी' जीवनीयगण (विटामिन) पर्याप्त मात्रा में होते हैं। यह सर्वाधिक पौष्टिक होता है। हमारे देश की सामान्य प्रचलित रीति यह है कि गर्म दूध का दही जमाकर उसे मथानी से मथा जाता है। मंथन क्रिया करने पर मक्खन ऊपर आ जाता है। इसे निकालकर बची हुई लस्सी को अर्थात् मट्ठे को पेय के रूप में अथवा कढ़ी-बड़े आदि अन्य पदार्थों के बनाने के उपयोग में लाया जाता है। इस निकाले हुए मक्खन को कढ़ाई में गरम करते हैं। ऐसा करने पर सारा पानी भाप के रूप में निकल जाता है और चिकनाई का तापमान बढ़ जाता है। जब उबलते रहने के बाद इसका रंग बादामी पड़ जाता है तो समझ लिया जाता है कि अब उबालने की और अधिक आवश्यकता नहीं है। इसे उतारकर ठंढा कर लिया जाता है और ठंढा होने पर छाँछ नीचे जम जाता है। इसे अलग कर घी को जमने के लिये रख दिया जाता है। यद्यपि मलाई (क्रीम) से सीधे घी तैयार करने का भी प्रयत्न किया गया है किंतु यह ढंग अधिक उपयोगी नहीं है। यदि मठे का

उपयोग कर लिया जाय तो सामान्य पशुपालक के लिये यही रीति अधिक उपयोगी है। मक्खन से ८० प्रतिशत के लगभग घी निकलता है। परीक्षण से ऐसा सिद्ध होता है कि एक पौंड घी तैयार करने के लिये २० सेर भैंस का या ३० सेर गाय के दूध की आवश्यकता पड़ती है।

दही—घी के पश्चात् दही भी एक अत्यधिक पौष्टिक पदार्थ है। यह दूध और देशी मक्खन बनाने की प्रक्रिया के मध्य में आता है। हमारे देश में भोजन को पौष्टिक बनाने के लिये यह एक आवश्यक अंश माना जाता है। इसे बनाने का ढंग यह है कि पहले दूध को खूब उबाल लिया जाता है। फिर उसे शरीर के तापमान तक ठंढा कर लिया जाता है। इसके पश्चात् इसमें छह से दस प्रतिशत पिछले दिन के शुद्ध दही की मात्रा मिलाकर जमा दिया जाता है। जमाने की कई रीतियाँ होती हैं। एक तो यह है कि इसके पात्र के चारो ओर कपड़ा लपेटकर घास-फूस के बक्स में रख देते हैं। दूसरी प्रचलित रीति यह है कि इसे घास-फूस के स्थान पर राख में रखा जाता है। दही के जमने में ८-१० घंटे लगते हैं। शुद्ध दही के जमकर तैयार होने पर उसके ऊपर बालाई की एक मोटी तह जम जाती है। यह मीठी और चिकनी होती है और इसमें किसी प्रकार के बुलबुले नहीं होते। उसका स्वाद मीठा और किञ्चित् खटारु वाला होता है किंतु इसमें किसी प्रकार की तीक्ष्णता नहीं होती।

चमन दही—उपरोक्त दही से यह अधिक स्वादिष्ट होता है। दो सेर दूध को उबालकर डेढ़ सेर रखा जाय। ठंढा करके उसमें आधा पाव शकर और डेढ़ तोला शुद्ध दही मिलाकर कहे हुये ढंग से जमा दिया जाय। जमाये जाने वाले पात्र के मुख पर १०-१२ गुलाब के फूल रख दिये जाँय। जम जाने पर इसे काम में लाया जाय। यह दही मीठा, अधिक स्वादिष्ट और सुगंधियुक्त होगा।

देशी मक्खन—घी बनाने की प्रक्रिया में हम मक्खन का वर्णन कर चुके हैं। देहातों में इसे 'नैनू' भी कहते हैं। ताजी नैनू समृद्ध परिवारों

में नित्य घी के स्थान पर काम में लाई जाती है। दही को एक मिट्टी के चौड़े मुँह के पात्र में जमाते हैं। यह पात्र काफी चौड़े मुँह की हाँड़ी या कूँड़ा होता है। दही के तैयार हो जाने पर उसे मथानी से मथते हैं। २०-२५ मिनट में चिकनाई का टूटना आरंभ हो जाता है। चिकनाई को दही से अलग करने के लिये ठंढे जल को मिलाने की आवश्यकता पड़ती है। थोड़ी देर में मक्खन की लोनी तैयार होकर लस्सी की सतह के ऊपर आ जाती है। इसके बाद इस लोनी को दबाकर निकाल लेते हैं जिससे कि इसमें बचा हुआ जल बाहर हो जाय। यही देशी मक्खन कहलाता है। गाय के दूध से तैयार मक्खन पीला और भैंस के दूध का सफेद होता है। लगभग १६ पौंड दूध से आधा सेर मक्खन तैयार होता है।

मट्ठा—आयुर्वेद में मट्ठे की अत्यधिक प्रशंसा की गई है। मट्ठे को एक ऐसा उपयोगी पदार्थ बताया गया है कि मट्ठा इन्द्रलोक में स्वयं इंद्र को भी दुर्लभ है।* यह सुपाच्य और शरीर को ताजगी पहुँचाने वाला होता है। जब दही से मक्खन निकाल लिया जाता है तो बचा हुआ तरल पदार्थ मट्ठा कहलाता है। कुछ लोग घरों में खाने के लिये इसे एक विशेष विधि से तैयार करते हैं। मलाई सहित ५ सेर दही को मथकर, उसमें चार तोला नमक, पाँच तोला अदरक, दो तोला गोल मिर्च, दो तोला हरी धनियाँ मिलाकर पाँच तोला घी में एक तोला जीरा और थोड़ी सी हींग डालकर छौंक देते हैं। यह पदार्थ बिक्री के दृष्टिकोण से तो नहीं, पर कभी-कभी विशेष अवसर पर घरेलू इस्तेमाल के ही काम आता है।

छेना—छेना विभिन्न प्रकार के मिष्टान्न और भोज्य पदार्थ बनाने के काम आता है। बंगाली मिठाइयाँ प्रायः छेना से ही तैयार की जाती हैं। एक सेर दूध को उबालते हैं। पहले से ही एक प्याले में नींबू का रस निकाल कर रख लेते हैं। जब दूध उबलने लगता है, तब इसे डालकर चलाकर भली भाँति मिला देते हैं। नींबू के रस के स्थान पर टाटरी (साइट्रिक एसिड)

---

* "तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्"।

का भी प्रयोग किया जा सकता है। दूध के सौ भागों पर ०.६ भाग टाटरी की आवश्यकता होती है। टाटरी को पानी में घोलकर नींबू के रस के समान काम में लाया जाता है। नींबू का रस या टाटरी मिलाने पर दूध फट जाता है। इसे छेना कहते हैं। दूध को किसी कपड़े से छानकर पानी निकाल देते हैं और फिर उसे कसकर निचोड़ते हैं जिससे कि उसका सारा तोड़ निकल जाय। छेने की पोटली के चारों ओर कपड़ा लपेटकर उसे दो पटरों के बीच दबाकर २-३ घंटे रख देने से तोड़ बिलकुल निकल जाता है। इसके पश्चात् इसमें से इच्छानुसार मिठाई तैयार की जा सकती है। साधारणत: दूध से २० प्रतिशत छेना प्राप्त होता है।

खोया---हमारे देश में खोये से ही सबसे अधिक मिठाइयाँ तैयार की जाती हैं। इसमें लाभ भी बहुत अधिक होता है। दो ढाई सेर दूध एक कढ़ाई में लेकर उसे एक करछुल से चलाते हैं। इसमें इस बात का ध्यान रखा जाता है कि कहीं खोया कढ़ाई में गल न जाय। धीरे-धीरे दूध का पानी भाप के रूप में उड़ जाता है और दूध गाढ़ा होकर रंग बदलने लगता है। थोड़े समय के बाद यह लेई के समान गाढ़ा होकर जम जाता है। अब इसे कड़ाही से उतारकर जल्दी-जल्दी चलाना चाहिये। ऐसा करने पर एक गोला सा तैयार हो जायगा जिसे किसी केले के पत्ते पर रखकर ठंडा कर लें।

कंडेंस्ड मिल्क---एक बड़े पात्र में पानी भरकर चूल्हे पर चढ़ा दिया जाय। जब पानी खौलने लगे तो उसमें एक छोटा बर्तन रखकर उसमें दूध भर दें और चलाते रहें। बिना मलाई पड़े इस प्रकार भाप में औटने के बाद जब वह गाढ़ा हो जाय तो उसमें शकर मिलाकर आग पर ही घोंटा जाय। इसके पश्चात् उसे सीलबंद डिब्बों में भर कर रखा जाय।

पनीर (Cheese) —पनीर पाश्चात्य जगत् की देन मानी जाती है। विदेशों में कच्चे दूध को एक वर्तन में रखकर उसमें नमक लपेटी

हुई गाय की आँत डुबो दी जाती है। इस प्रकार दूध जम जाता है। इस दही को किसी कपड़े में भली भाँति बाँधकर लटका देते हैं और धीरे-धीरे इसका सारा पानी निकल जाता है। अंत में उस पर कोई भारी वस्तु रखकर बचा हुआ जल भी निकाल देते हैं। इसके बाद किसी स्वच्छ बर्तन में रखकर खुले हुए छायादार स्थान में सुखाते हैं। कहीं शुद्ध दूध की और कहीं मलाई निकले हुए दूध की पनीर बनती है। इसके बनाने में १५-२० दिन लग जाते हैं। हमारे देश में प्राय: लोग गाय की आँत की जगह बकरी की आँत का प्रयोग करते हैं।

इसके अतिरिक्त खोये से नाना प्रकार की मिठाइयाँ भी बन सकती हैं। छोटी-मोटी बस्ती में भी यह काम करके एक परिवार का गुजर-बसर चल सकता है।*

केसीन (Casein)—सवा सेर निघृत दूध में (१ भाग एसिड और २० भाग पानी वाले सल्फ्यूरिक एसिड घोल) मिला दें। इस प्रकार दूध का छेना और पानी अलग-अलग हो जायगा। इसे छानकर छेना निकाल लिया जावे। छेने को गरम पानी से धो देने पर उसमें मक्खन का ज़रा भी अंश नहीं रह जाता। इसके बाद इसे सुखाकर बुकनी बना ले। यही केसीन कही जाती है।

दुग्ध शर्करा (Milk-Sugar)—उपर्युक्त केसीन में बताये गये ढंग से जब छेना अलग कर लिया जाता है तब दुग्धशर्करा का पानी अलग हो जाता है। इस बचे हुए अंश में एसिड को नष्ट करने के हेतु एक तोला चाक की बुकनी डाल देनी चाहिये। इस प्रकार इससे गैस निकलेगी और चूने का अंश एसिड से मिलकर प्लास्टर बनकर नीचे जम

---

* विस्तृत विवरण के लिए श्री प्रभाकर साहित्यालोक लखनऊ से प्रकाशित 'अन्नपूर्णा पाक प्रणाली' का अवलोकन करें।

जायगा। यही प्लास्टर आफ पेरिस (Plastr of Paris) कहलाता है। अब ऊपर का पानी लेकर यदि उसे औंटा जाय तो काली-काली शकर तैयार हो जाती है। इसे गरम करके पिघलाकर औंटने से इसका रंग पीला हो जाता है। ६-७ बार साफ करने से यह सफेद हो जाती है।

ऊन का उद्योग और सुअर के बाल—ऊन के प्रचलित उद्योगों में कम्बल, ऊनी वस्त्र, गलीचे आदि के उद्योग प्रमुख हैं। संसार की ऊनी मिलों में इसकी वहुत खपत है। भेड़ों का ऊन प्राय: सर्वोत्कृष्ट होता है। अच्छा ऊन प्राप्त करने के लिये उन्नतिशील भेड़ें पालना चाहिये। बीकानेरी भेड़ों के बालों का कालीन सबसे अच्छा होता है। भेंड़ के अतिरिक्त सुअर के बालों का मूल्य भी पर्याप्त होता है। इसके बालों के बने ब्रुश आदि बड़े कीमती होते हैं। इसके अतिरिक्त बकरी, घोड़ा, ऊँट आदि का ऊन भी काम में लाया जाता है।

भेड़ों की ऊन काटना—भेड़ों की ऊन प्रति वर्ष दो बार कतरनी चाहिये। जाड़े के अन्त में मार्च-अप्रैल में और गर्मी के अन्त में सितम्बर व अक्टूबर में। इस समय न तो शीत का ही प्रकोप होता है और न गर्मी का हो। ऊन लेने से एक सप्ताह पूर्व भेड़ों को खूब नहला-धुलाकर साफ रखना चाहिये। फिर १२-१४ इंच लम्बी तेज धार वाली कैंची से बाल काट लेने चाहिये। इसके लिये एक मशीन भी काम में लाई जाती है। बाल खाल के बिलकुल निकट से काटने चाहिये किंतु इसका ध्यान सदैव रहे कि कहीं खाल कटने न पावे। जहाँ बाल काटे जायँ वहाँ भूमि का फर्श साफ हो। भिन्न-भिन्न कोटि का ऊन अलग-अलग रखना चाहिये। आठ माह के बच्चे का ऊन सर्वश्रेष्ठ होता है। विभिन्न रंगों की ऊन, और गर्दन तथा धड़ की ऊन अलग-अलग रखी जाय। प्रति वर्ष एक भेड़ से मिलनेवाले ऊन का लेखा रखना अच्छा रहता है और एक औंस ऊन किसी लेबरेटरी में भेजकर उसकी जाँच करवा लेना भी उचित है। ऊन काटने के बाद उसकी बड़ी-बड़ी गुच्छियाँ बना लें। डोरी या रस्सी से बाँधने का ढंग ठीक नहीं है।

ऊँट का ऊन—राजस्थान में ऊँट के बालों को काटकर लोई या कम्बल बनाते हैं।

सुअर के मांस का संरक्षण—मांस के संरक्षण की दो विधियाँ हैं—(१) तर (२) शुष्क। एक सुअर से मिलनेवाले मांस की मात्रा उसकी खिलाई-पिलाई पर निर्भर करती है। दो सौ पौंड भार के सुअर से १५३ पौंड मांस का औसत पड़ता है।

नमक के घोल से संरक्षण—१२ पौंड नमक, ३ पौंड शकर और ३ पौंड शीरा अच्छी तरह एक में मिलाकर लकड़ी या सीमेंट के नाँद में भर दिया जाता है। मांस के टुकड़ों को ठीक से काटकर इस घोल में डाल दिया जाता है। मांस का खाल वाला भाग सदैव नीचे रखना चाहिये। घोल में रखने के पश्चात् मांस को निकालकर ठंढे पानी में धोकर साफ कर लेना चाहिये और ठंढे कमरे (Cold Storage) में ४०-५० डिग्री के तापमान पर रख देना चाहिये।

शुष्क रीति से संरक्षण—८ पौंड नमक, ३ पौंड शकर, ४ औंस लाल मिर्च, ३ औंस शीरा भली भाँति एक में मिलाकर मांस के टुकड़ों पर खूब रगड़ते हैं और बाद में लकड़ी या सीमेंट की नाँद में तहें लगाकर रख देते हैं। हर तह के बीच उक्त मिश्रण होता है। मांस को तीन दिन तक रखना चाहिये। बाद में उसे पहली रीति के समान ठंढे पानी से धोकर कोल्डस्टोरेज में रख देते हैं।

हड्डी, चमड़ा आदि—पशुओं की हड्डी की खाद बड़ी उपयोगी होती है। इसे मिलों में ले जाकर खाद बनाया जाता है। वैसे यदि किसान चाहें तो स्वयं भी इसकी खाद तैयार कर सकते हैं। *

---

* हड्डी की खाद बनाने की विधि के लिये देखें—
भारतीय कृषि विज्ञान भाग १ या २ (खाद का अध्याय) प्रकाशक—प्रभाकर साहित्यालोक, लखनऊ।

चमड़ा—हमारे देश में चमड़े के उद्योग के लिये बड़ा क्षेत्र हैं। हमारे यहाँ चमड़े के उद्योग में जो लोग हैं उनका ढंग बहुत पिछड़ा हुआ है। यदि मरे हुए पशु का चमड़ा ठीक से निकालकर रखा जाय तो उससे अधिक आर्थिक लाभ हो सकता है। *

हाथीदाँत—हाथी दाँत का मूल्यवान काम भारत का बहुत पुराना उद्योग है। देश-विदेशों में इसकी खपत और कद्र बहुत है।

उत्तर प्रदेश राज्य की सरकार आजकल हाथियों से, ट्रैक्टर व हल चलवा कर, तराई क्षेत्रों में खेती के काम में उनका प्रयोग सफलता पूर्वक कर रही है।

सीगों से कंघी आदि के भी कुटीर उद्योग चलाये जा सकते हैं।

————

* चमड़ा—स्थानाभाव के कारण यहाँ हम चमड़ा निकालने व रखने की उन्नत प्रणाली पर प्रकाश नहीं डाल सकते। शीघ्र ही प्रकाशक के द्वारा चमड़ा उद्योग नामक पुस्तिका प्रकाशित होगी।

वैज्ञानिक पशुपालन व चिकित्सा

द्वितीय खण्ड

(चिकित्सा-प्रकरण)

ज्ञातव्य विषय

(चिकित्सा के संबंध में)

पशुपालन एवं उनकी चिकित्सा के संबंध में सर्वप्रथम श्वास एवं नाड़ी-ज्ञान, तापक्रम तथा आयु आदि निश्चित करने की विधि की आवश्यक जानकारी अपेक्षित है।

भार जानना---सर्वप्रथम पशु की छाती की गोलाई की नाप इञ्चों में ले लें। पुनः कन्धे से कूल्हे की हड्डी तक की लम्बाई भी इञ्चों में नाप लें। फिर गोलाई को गोलाई से गुणा करें और पुनः उस फल को लम्बाई से गुणा करें। जो संख्या आवे उसे ३०० से भाग कर दें। जो उत्तर निकले वही पशु का भार पौंडों में होगा। अर्थात्—

$$\frac{\text{गोलाई (मोटाई)} \times \text{गोलाई (मोटाई)} \times \text{लम्बाई}}{३००} \cdots \text{पौंड}$$

उदाहरणार्थ एक गाय की मोटाई ६० इंच तथा लम्बाई ५० इंच है तो भार—

$$\frac{६० \times ६० \times ५०}{३००} = ६०० \text{ पौंड।}$$

श्वास एवं नाड़ीज्ञान---प्रत्येक पशुपालक को पशु के श्वास, नाड़ी एवं तापक्रम का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। घोड़े की नाड़ी जबड़े के कोण

से, गाय आदि की दुम से और कुत्ते की रान के नीचे से देखते हैं। पशुओं का तापक्रम देखने के लिये पशु-तापमापक यन्त्र (Veterinary Thermometer) काम में लाया जाया है। स्वस्थ पशुओं की श्वास नाड़ी एवं तापक्रम की सामान्य स्थिति निम्न तालिका के अनुसार रहती है। मनुष्यों के समान ही पशुओं की भी श्वास, नाड़ी एवं तापक्रम की गति बदलती रहती है। बूढ़ों की अपेक्षा बच्चों में तथा नर की अपेक्षा मादा में अधिक तापक्रम होता है। इसी प्रकार सायंकाल प्रातः से अधिक तापक्रम होता है। श्रम करने अथवा चारा आदि खाने पर तापक्रम में वृद्धि और पानी पीने से उतार आता है। गर्मी में पशुओं का तापक्रम अधिक रहता है किन्तु घोड़ों की अपेक्षा अन्य पशुओं में उपरोक्त अन्तर अधिक नहीं होता। भेड़ों व बकरियों में तापक्रम साधारण दशाओं में भी बदलता रहता है। नाड़ी एवं श्वास की गति में भी इसी प्रकार परिवर्तन होता है। सामान्य स्थिति में इनका घटना और बढ़ना दोनो ही दशायें चिंतनीय हैं।

प्रति मिनट श्वास, नाड़ी एवं तापक्रम की तालिका

पशु	श्वास	नाड़ी	तापक्रम
गाय, बैल, भैंस	१२—१६	४५—५०	१०१.४
घोड़ा	८—१२	३६—४२	१००.४
ऊँट	५—१५	३२—५०	९९.५
भेंड़-बकरी	२०—३०	४०—८०	१०३.०
हाथी	१२—१६	४६—५०	९७.६
कुत्ता, बिल्ली	१५—२५	८०—९०	१०१.५
सुअर	१८—२०	७०—८०	१०२.६

पशुओं की आयु निश्चित करना—पशुओं के क्रय-विक्रय के समय, बीमारी में औषधि देने तथा अन्य अनेक अवसरों पर उनकी उम्र के सम्बन्ध में जानकारी आवश्यक होती है। पशुओं की आयु उनके दाँत, दाँतों की संख्या, उनकी वृद्धि, नेत्र तथा सींगों को देखकर

निश्चित की जाती है। यहाँ हम भिन्न-भिन्न पशुओं की आयु निश्चित करने के लिये पृथक-पृथक विवरण प्रस्तुत करते हैं।

गाय बैल भैंस की आयु—जन्म या जन्म से कुछ दिन में २ मध्य, २ पार्श्व और २ कोने के अस्थायी (दूध के) दाँत आ जाते हैं। साथ ही पहली दूसरी और तीसरी अस्थायी (दूध की) दाढ़ें भी आती हैं। ६ माह का होने पर चौथी और सवा वर्ष में पाँचवीं दूध की अर्थात् अस्थायी दाढ़ आ जाती है। पौने दो से सवा दो वर्ष में बीच में दो स्थायी दाँत आ जाते हैं। साथ ही दो वर्ष का होते ही छठी अस्थायी दाढ़ भी आ जाती है। सवा दो वर्ष से पौने तीन वर्ष तक के समय में पार्श्व-मध्य के दो स्थायी दाँत और निकल आते हैं। इसी समय पहली और दूसरी स्थायी दाढ़ भी आ जाती है। पौने तीन से सवा तीन वर्ष की आयु में पार्श्व में दो स्थायी दाँत और तीसरी स्थायी दाढ़ और निकल आती है।

सवा तीन से पौने चार वर्ष तक के समय में कोने के शेष दो स्थायी दाँत भी निकल आते हैं।

सींगों से आयु जानना—उपरोक्त पशुओं की आयु सींगों से भी जानी जा सकती है। सींगों में चक्करदार गोल फेरे से होते हैं। इन्हें कहीं-कहीं गड़ेरे (Rings) कहते हैं। साधारणतया सींग की सतह पर पहले गोल फेरे से पशु की आयु तीन वर्ष समझनी चाहिये। यदि सींग में आठ फेरे हों तो पशु की आयु आठ वर्ष समझनी चाहिये।

घोड़े की आयु—घोड़े के जन्म के समय मध्य में ४ अस्थायी दाँत होते हैं और पहली, दूसरी व तीसरी अस्थायी दाढ़ें होती हैं। एक से डेढ़ महीने में पार्श्व के चार और नौ महीने में कोने के चार अस्थायी दाँत आ जाते हैं। एक वर्ष में चौथी और पौने दो वर्ष में पाँचवीं स्थायी दाढ़ आ जाती है। ढाई वर्ष में बीच के चार स्थायी दाँत और पहली व दूसरी स्थायी दाढ़ें निकल आती हैं। साढ़े तीन वर्ष की आयु में ४ पार्श्व के भी दाँत और तीसरी अस्थायी दाढ़ उग आती है। इसी प्रकार चार से

साढ़े चार वर्ष के अन्दर कोने के चार स्थायी दाँत और छठी स्थायी दाढ़ भी आ जाती है।

पाँच वर्ष में इसका जबड़ा दाँतों से पूरा हो जाता है। छठे वर्ष बीच के दाँतों का स्तर समान हो जाता है। सात वर्ष पूरे होने पर पार्श्वीय और आठ में दाँतों का स्तर समान हो जाता है। आठ वर्ष के बाद घोड़ा प्रौढ़ होता है।

भेड़ बकरी की आयु---जन्म और जन्म के बाद कुछ समय के भीतर २ मध्य, २ पार्श्व, २ मध्यपार्श्व और २ कोने के अस्थायी दाँत और पहली, दूसरी और तीसरी अस्थायी दाढ़ें आ जाती हैं। तीन महीने में चौथी और नौ महीने में पाँचवीं स्थायी दाढ़ आ जाती है। एक से सवा वर्ष में मध्य के २ स्थायी दाँत निकल आते हैं। डेड़ से दो वर्ष में पार्श्व-मध्य के २ स्थायी दाँत और छठी, पहली, दूसरी व तीसरी स्थायी दाढ़ें आ जाती हैं। सवा दो वर्ष से पौने तीन बर्ष तक पार्श्व के २ तथा सवा तीन वर्ष तक कोने के २ स्थायी दाँत निकल आते हैं।

हाथी की आयु---हाथी की आयु निश्चिय करने का कोई स्थिर सिद्धांत अभी तक नहीं ज्ञात हो सका। कुछ बूढ़ें महावत निःसन्देह कुछ परख रखते हैं किन्तु वे भी प्रायः अनुमान करते हैं। पर निश्चित पहचान नहीं बतला पाते।

पशुओं की सामान्य आयु—समुचित देखभाल करने पर गाय, भैंस आदि २० वर्ष, घोड़ा ५० वर्ष, हाथी १०० वर्ष, सुअर २५ वर्ष, कुत्ता २० वर्ष और भेंड़-बकरी १५ वर्ष के लगभग जीवित रहते हैं।

पशुओं का युवाकाल—भिन्न-भिन्न पशु अलग-अलग आयु में युवावस्था को प्राप्त होते हैं। गाय, भैंस आदि डेढ़ से दो वर्ष, घोड़ी एक से दो वर्ष, भेड़ बकरी ८ महीने से १ वर्ष और कुत्ता ७ से १० महीने में युवा होता है। हाथी की युवावस्था इनकी अपेक्षा अधिक वर्षों में होती है।

गर्भावस्था का समय—भिन्न-भिन्न पशुओं की गर्भावस्था का

समय अलग-अलग होता है। गाय आदि पशुओं की गर्भावस्था का समय २७५ से २८७ दिन है। घोड़ी का गर्भकाल ३३५ से ३४५ दिन, भेड़-बकरी का १४६ से १५१ दिन, ऊँटिनी का ३१५ से ३२५ दिन और हाथी का लगभग का २ वर्ष है।

पशुओं के गर्भ होने के दिनों की तालिका

नाम पशु	गर्म रहने का समय	ब्याने के कितने दिन बाद पशु गर्म होते हैं।	गाभिन न हुए तो पुनः गर्माने का समय
गाय	२ से ४ दिन	२१ से २८ दिन	३-४ सप्ताह या अधिक
घोड़ी	५ से ७ दिन	७ से १० दिन	२-३ ,, ,, ,,
भेड़-बकरी	१ से २ दिन	४ से ६ माह	१७ से २० दिन
कुत्ता	१ से ३ सप्ताह	५ से ६ माह	५ से ६ माह

तौल नाप—औषधियों की मात्रा तैयार करने में भिन्न-भिन्न बाँटों और नापों का प्रयोग किया जाता है। यहाँ पर उपयोगी तौल-बाँट दिये जाते हैं।

तौल बाँट

१ ड्राम=४ माशा
३ " =१ तोला
१ औंस=ढाई तोला
१ पौंड=लगभग ७॥ छटाँक
१ सेर=१६ छटाँक

१ फ्लूइड औंस=२ छटाँक
१ पाइन्ट=१० छटाँक
१ क्वार्ट=२० ,,

औषधि खिलाने की विधि

औषधि-मात्रा—विभिन्न पशुओं को दी जाने वाली औषधियों की मात्रायें एक-सी नहीं रहती। मात्रा पशु की जाति, आयु तथा भार (वजन) के अनुसार बदलती रहती है।

जाति के अनुसार औषधि मात्रा---पुस्तक में दी हुई मात्रायें ५०० पौंड से अधिक भारवाले गाय, भैंस आदि सामान्य पशुओं के लिये हैं। ऊँट और बड़े घोड़ों को मात्रा दूनी देनी चाहिये। पूरी आयु की भेंड़-बकरियों को निर्धारित मात्रा का छठा भाग ही देना चाहिये। हाथी की औषधि मात्रा सामान्य मात्रा की तीन गुनी और कुत्ते को सामान्य मात्रा का आठवाँ भाग देना चाहिये।

आयु के अनुसार औषधि मात्रा---पशु की जाति के अनुसार औषधि मात्रा निश्चित कर लेने के बाद उसकी आयु के दृष्टिकोण से उसमें कमी-बेशी करनी चाहिये। यहाँ पर आयु के अनुसार औषधि-मात्रा की तालिका दी जाती है।

गाय, बैल, भेंड़, बकरी आदि

आयु		मात्रा
१ से ३ माह	—	१/१६ भाग
३ से ६ "	—	१/८ "
६ माह से १ वर्ष	—	१/४ "
१ से २ वर्ष	—	१/२ "
२ वर्ष से ऊपर	—	पूर्ण मात्रा

घोड़ा व ऊँट

आयु		मात्रा
चार माह तक	—	१/१६ भाग
४ से ६ माह	—	१/८ "
६ माह से डेढ़ वर्ष	—	१/४ "
डेढ़ से ६ वर्ष	—	१/२ "
३ वर्ष से ऊपर	—	पूर्ण मात्रा

कुत्ता

आयु		मात्रा
२० दिन तक		१/१६ भाग
२० दिन से डेढ़ माह	—	१/८ ,,
डेढ़ से ३ माह	—	१/४ ,,
३ से ६ ,,	—	१/३ ,,
६ माह से ऊपर	—	पूर्ण मात्रा

भार के अनुसार मात्रा---जाति व आयु के अनुसार औषधि-मात्रा निश्चित कर लेने केबाद पशु के भार पर भी ध्यान देना चाहिये। पुनः कहने की आवश्यकता नहीं कि पुस्तक में दी हुई औषधियाँ ५०० पौंड से अधिक भारवाले पशुओं के लिए हैं। हाथी आदि के बच्चों को इसी भार के अनुसार औषधि दी जाय। कुत्ते की औषधि मात्रा में भार का अत्यधिक ध्यान रखना चाहिये।

कुत्ते भार के अनुसार मात्रा--- ढाई पौंड भार वाले कुत्ते को १/४ भाग, ५ पौंड वाले को १/३ भाग, १० पौंड वाले को २/३ भाग और १५ पौंड वाले को पूरी मात्रा देनी चाहिये। इससे अधिक भार होने पर इसी अनुपात से मात्रा बढ़ाते रहना चाहिये। ३० पौंड होने पर मात्रा दुगनी और ४५ पौंड होने पर ३ गुनी हो जाती है। इस प्रकार पशुओं की औषधि मात्रा का निश्चय करने में उपरोक्त तीन चीजों (पशु की जाति, आयु और भार) को ध्यान में रखना चाहिये। होम्योपैथिक औषधियाँ देने का ढंग दूसरा है, अतएव उन्हें अलग समझाया गया है।

होम्योपैथिक औषधियाँ

इनमें मात्रा, क्रम और समय का ध्यान रखना पड़ता है। इस संबंध में जितना भी लिखा जाय थोड़ा होगा। यह बहुत कुछ अनुभव पर ही निर्भर करता है।

मात्रा—होम्योपैथी में रोग की नहीं वरन् रोगी या रोग के लक्षणों की चिकित्सा की जाती है। मनुष्य के समान ही पशु-पक्षियों में भी जीवनीय शक्ति होती है। इस प्रकार होम्योपैथी में मानव तथा पशु की औषधि में कोई अन्तर नहीं रहता क्योंकि समान जीवनीय शक्ति होने के कारण रोग-लक्षण भी समान ही होते हैं। इसके विपरीत अन्य चिकित्सा-पद्धतियों में मनुष्य एवं अन्य जीवों के आकार-भेद के अनुसार मात्रा में भी विभिन्नता होती है। होम्योपैथी में यह अन्तर केवल आयु के भेद से होता है।

क्रम—(Power)—क्रम का ध्यान सबसे महत्वपूर्ण है। इसके सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद रहा है। कुछ उच्च क्रम और कुछ निम्न क्रम के समर्थक हैं। किन्तु अनुभव से ऐसा सिद्ध होता है कि पशुओं को उच्च क्रम की औषधियाँ अधिक लाभ पहुँचाती हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर २०० और उससे उच्च क्रम की औषधियाँ अधिक लाभ करती हैं।

समय—इस संबंध में कोई निश्चित सिद्धान्त स्थिर करना बड़ा कठिन है। यह बहुत कुछ रोग की उग्रता पर निर्भर करता है। यदि लक्षणों से प्रतीत होता है कि रोग घातक है तो औषधि थोड़े समय के अन्तर से देना उचित होगा।

होम्योपैथिक औषधि देने का ढंग

पशु का मुँह साफ और दुर्गंधरहित होना चाहिये। दो ड्राम वाली एक साफ शीशी में 'डिस्टिलड वाटर' लेकर दवा की बूँदें मात्रा के अनुसार डाल दें। जितनी बूँदें डाली जायँगी उतनी ही मात्रा तैयार हो जायगी। इसके बाद बाँस की नील या चुँगली में साफ पानी भरकर शीशी से एक मात्रा दवा उसमें डालकर पशु को पिला दें। एक नली से एक ही दवा दें और उसमें कोई गंध न रहने दें।

नोट—यह विषय वस्तुतः बहुत गहन है। इस पर बहुत कुछ लिखा

जा सकता है। किन्तु अभ्यास के द्वारा ही उस कमी की पूर्ति हो सकती है।

विविध औषधि देने के प्रकार—औषधियों के रूप के अनुसार उन्हें देने के भी ढंग भिन्न-भिन्न हैं। पशुओं को औषधि देने के लिए चतुरता एवं अभ्यास की अत्यंत आवश्यकता होती है। यहाँ संक्षेप में इस पर प्रकाश डाला जायगा।

औषधियाँ मुख्यतया (१) गोली, (२) घोल, (३) चूर्ण, (४) अवलेह (चटनी) और (५) इन्जेक्शन के रूप में दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त पुल्टिस और पाँवधोवन के द्वारा भी कुछ औषधियों का बाह्य प्रयोग होता है।

कुछ औषधियाँ गोली के रूप में दी जाती हैं। सूखी औषधि को किसी गीली वस्तु के साथ मिलाकर डेढ़ से दो इंच लम्बी गोलियाँ बनाकर खिलाई जाती हैं। कुछ औषधियाँ घोल अर्थात् तरल होती हैं जिन्हें पिलाया जाता है। चूर्ण के रूप में भी कुछ औषधियाँ होती हैं। इसी प्रकार कोई-कोई औषधि अवलेह (चटनी) के रूप में दी जाती है। विज्ञान की सर्वतोमुखी उन्नति के इस समय में इन्जेक्शन के द्वारा भी औषधियाँ दी जाती हैं। इनके ३ भेद यह हैं—(१) त्वचा में, (२) शिरा में, (३) मांस में।

औषधि प्रयोगविधि

(१) औषधि पिलाना—एक व्यक्ति पशु की बाईं ओर खड़ा होकर उसकी सींग दृढ़ता से पकड़ लेता है। एक अन्य व्यक्ति पशु के दाहिने खड़े होकर बायें हाथ को उसके चेहरे पर रखकर अँगूठे व अँगुलियों की सहायता से उसके मुँह को खोलता है। पशु के उद्दण्ड होने पर बाँयें नथुने में दो अँगुलियाँ और दाहिने में अँगूठा डालकर पकड़ लेना चाहिए। बाँस की नली (चोंगली) से दवा पिलाई जाती है। दवा पिलाते समय कुछ बातों में अत्यधिक सावधानी रखनी चाहिए। पशु का सिर उसकी पीठ के

धरातल से कभी अधिक ऊँचा न उठे। उसके खाँसने की चेष्टा करने पर उसे ढीला कर दिया जाय। पशु की साँस न रुकने पाये, इसका ध्यान सदैव रखना चाहिये।

(२) औषधि चटाना—प्राय: साँस का रोग होने पर अथवा गले में किसी विकार के होने पर औषधि पिलाना कठिन हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में औषधि शीरा या शहद के साथ चटनी बनाकर पशु की दाढ़ों पर या जीभ पर रखी जाती है।

(३) मुँह धोना—कभी-कभी ओठों, मसूढ़ों व जीभ आदि में विकार होने पर मुँह सूज आता है। ऐसे समय कीटाणुनाशक घोल से मुँह की धुलाई लाभप्रद सिद्ध होती है। घोल एक नलीयुक्त यंत्र (एनिमा) में भरकर, नली को एक ओर के दाँतों के बीच से मुँह में डाल देते हैं। औषधि चारो ओर आसानी से पहुँच सके, इसलिये जीभ को स्वतंत्रता के साथ हिलने-डुलने देना चाहिये।

(४) एनिमा—पशु को पूर्णरूपेण वश में लाकर उसकी गुदा में चिकनी उँगलियाँ डालकर सूखा हुआ मल निकाल लेना चाहिये। दो गेलन गुनगुना साबुन का घोल रबर की नली के एक सिरे पर लगी हुई कीप में उँड़ेलकर रबर के दूसरे छोर पर लगी नली को पशु की गुदा के भीतर कर दिया जाय। नली के बाहर निकालने पर घोल घुला हुआ मल भी साथ हो निकल आता है।

(५) बफारा—बफारा प्राय: साँस की बीमारियों में दिया जाता है। एक बाल्टो का तीन चौथाई भाग खौलते हुए पानी से भर दिया जाता है। इसके बाद उसमें २५-३० बूँद तारपीन या यूकलिप्टस का तेल डालकर पशु का मुँह व बाल्टो एक बोरो से ढककर किसी बंद स्थान में बफारा करना चाहिये।

(६) सेंक—सेंक करने से चोट खाया हुआ स्थान ढीला पड़ जाता है तथा दर्द व जलन कम पड़ जाती है। आधे गैलन खौलते हुए

गर्म जल में पाव भर नमक मिला दें। इसमें किसी कम्बल के दो टुकड़े डाल दें और निचोड़कर एक-एक करके शरीर पर रक्खें।

(७) **फुटबाथ (पाँव धोवन)**—मुँह और खुरपका के रोगों में पाँवधोवन विशेषकर लाभप्रद होता है। अधिक पशुओं के रोग-ग्रस्त होने पर १ प्रतिशत फिनायल या कोपर सल्फेट का घोल तैयार कर एक फुटबाथ में भरकर, उससे होकर पशुओं को निकाल दिया जाय। एकाध पशु होने पर बाल्टी से भी काम चलाया जा सकता है।

(८) **प्लास्टर**—यह चिपकाने वाली औषधियों के मिश्रण से तैयार किये जाते हैं। इन्हें बाह्य प्रयोग के लिये चमड़े या कपड़े पर लगाकर बनाते हैं। इनमें प्रायः मोम, साबुन, चर्बी आदि का मिश्रण होता है।

(९) **डुबकी**—पशुओं के बाह्य चर्म पर किलनी या जूँ मारने के लिये उन्हें संखिया मिश्रित औषधि या डेरिस पाउडर के घोल से भरे टब में नहलाया जाता है। भेड़ों के लिये यह विशेष रूप से लाभप्रद है।

(१०) **इन्जेक्शन**—इसका तत्काल प्रभाव पड़ता है। रोग गंभीर होने पर तत्काल लाभ पहुँचाने के लिये इनका प्रयोग होता है। यह स्वयं न लगाकर किसी पशुचिकित्सक से ही लगवायें।

(११) **पुल्टिस**—इसे चोकर, अलसी या गेहूँ के आटे से तैयार किया जाता है। इसे किसी मोटे कपड़े के दो परतों के बीच रखकर शरीर के दूषित भाग पर रख देते हैं। इसमें विषनाशक प्रभाव लाने के लिये केवलीन-ग्लैसरीन भी मिला देते हैं। इसे दिन में २-३ बार बद-लना पड़ता है, जिससे कि इसका प्रभाव बना रहे।

पशु को वश में करना

पशु की चिकित्सा में सर्वप्रथम काम उसे वश में करना है। औषधि देने, चीरफाड़ करने, रोग पहचानने तथा नाल आदि लगाने के लिये उन्हें वश में करने की आवश्यकता होती है। पशु को वश में करते समय

इसका सदैव ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं उसे चोट न आ जाय अथवा औषधि देने वाले या उसके सहायक को ही किसी प्रकार की चोट पहुँचा दे। भिन्न २ पशुओं को वश में लाने के लिये भिन्न २ रीतियाँ काम में लाई जाती हैं। गाय, बैल, भैंस आदि पशु नथुनों से, ऊँट अपनी नकेल से हाथी अंकुश से, बकरी कान से और कुत्ता बिल्ली आदि छोटे पशु प्रेम से वश में लाये जाते हैं। यहाँ इसकी कुछ सरल एवं सामान्य विधियाँ दी जाती हैं। गाय बैल आदि घरेलू पशुओं को वश में करने के लिये आँखों पर अँधेरी का प्रयोग करना अच्छा रहता है। बैलों को नाथ या बुलरिंग लगाकर वश में किया जाता है।

पशु के मुँह व सिर की जाँच करना—यदि पशु सींगों वाला है तो बाईं ओर खड़े होकर उसको सींगों को दृढ़ता से पकड़कर दाहिने हाथ से उसके दाहिने नथुनों में अँगूठा और बायें में पहली व दूसरी उँग-लियाँ डालकर पकड़ लें। अब दाहिना हाथ बिलकुल खाली हो जायगा। यदि पशु उद्दंड है या अधिक समय तक वश में रखना है तो बुल 'होल्डर' का प्रयोग करें। पशु का शिर किसी पेड़ या बल्ली में बाँधकर उसकी पूँछ पीछे से खींची जाय तो वह सरलता से वश में आ जाता है। इस समय वश में करनेवाले को बहुत सावधान रहना तथा अपने पैर फैले हुए और पीठ पशु की गर्दन से मिली हुई रखनी चाहिये।

अगली टाँगें—सीधे पशु की टाँग हाथ से भी सरलता के साथ उठायी जा सकती है। एक कपड़ा लिपटी हुई रस्सी, जो टाँग उठानी हो उसी के खुरों पर बाँध दी जाय सौर दूसरा सिरा कंधे से होकर दूसरी ओर एक व्यक्ति पकड़े। अब जो टाँग उठानी है उस ओर से पशु पर दबाव डाला जाय। जैसे ही वह पैर उठावे रस्सी का सिरा खींच लिया जाय। ऐसा करते समय पशु को सँभाले रहना चाहिये जिससे कि उसका एक पैर भूमि पर सधा रह सके। उद्दंड पशु प्रायः पैर में रस्सी नहीं बाँधने देते। ऐसी परिस्थिति में रस्सी में सरकने वाला फंदा बनाकर

पशु के आगे फेंक दिया जाय और चलने पर जब पैर उसमें आ जाय तो खींच ले। इससे गाँठ पैर में कस जायगी।

पिछली टाँगें—ऐन या थनों की जाँच करने के लिये पिछली टाँगों को एक रस्सी से बाँधकर करनी चाहिये। इसमें सरलता से खुलने वाली गाँठ लगानी चाहिये। यदि एक टाँग उठानी है तो एक दो गज लम्बा चिकना और दृढ़ डंडा लेकर जिस टाँग को उठाना है उसके टखने के आगे और दूसरी के पीछे ले जाकर दो व्यक्ति ऊपर को उठायें। पशु को सहारा देने व साधने के लिये उसके पुट्ठे को दबाये रखना आवश्यक है। प्राय: लोग पशु की पूँछ का भी प्रयोग करते हैं। पूँछ को पशु की जाँघ के भीतर से निकालकर खींच के सामने रखकर जोर से पीछे की ओर खींचते हैं। इस ढंग से भी पशु अपना पैर उठा देता है।

पड़े हुए पशु को उठाना—पड़े हुए पशु प्राय: पुचकारने, पुट्ठों पर पैर से धक्का देने, दुम को पांव या डंडे से दबाने अथवा बाड़े में किसी बाहरी कुत्ते के आ जाने से उठ खड़े होते हैं। यदि इस प्रकार पशु न उठे तो पशु के सामने ऐनों के नीचे किसी दृढ़ बल्ली को लगाकर दो व्यक्ति ऊपर उठा सकते हैं। उठाने के बाद पिछले पुट्ठों व पैरों में घास-फूस मल देनी चाहिये।

साँड़ को वश में करना---साँड़ के नथुनों के पर्दे को छेदकर छल्ला लगा दिया जाता है। इसे अल्मोनियम और ताँबे के दो अर्ध गोलाकार टुकड़ों को मिलाकर तैयार किया जाता है। एक पाँच-छ: फुट लम्बे डंडे में एक ओर काँटा लगा होता है। इस काँटे को छल्ले में डाल कर उसे वश में किया जा सकता है। इसे 'बुलरिंग' कहते हैं।

पशु को गिराना---एक आठ-दस गज लम्बा रस्सा लेकर उसके एक छोर में एक फंदा बना लें। इसे सींगदार जानवर के सींगों में, अन्यथा गर्दन में लगा दें। इसके पश्चात रस्सी से गर्दन के चारो ओर, पुन: प्रकोष्ट के पीछे सीने के चारो ओर और अंत में ऐन या अण्डकोष के पास

पेट के चारो ओर बाँधकर रस्सी को दो व्यक्ति इस प्रकार खींचें कि पशु गिर जाय। गिरने पर पाँव किसी सुदृढ़ खूँटे या पेड़ से बाँध दें। इस समय अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता होती है। गर्दन के चारो ओर फन्दा तभी डालना चाहिये जब रस्सी काफी लम्बी हो। गिरे हुये पशु को सँभाले रहना चाहिये जिससे कि उसके सींग न टूट जाँय। पशु को गिराने के पूर्व भूमि पर नर्म घास या पुआल बिछा लेना चाहिये और शीघ्र ही कार्य समाप्त कर देना चाहिये। अधिक समय तक पड़े रखने से अफरा रोग हो जाने की आशंका रहती है।

रोग के कारण व लक्षण

रोग के कारण—पशु प्राय: चारे-दाने की गड़बड़ी से बीमार पड़ जाया करते हैं। सड़ा-गला चारा, गन्दा जल, आवश्यकता से अधिक या कम आहार, और उसमें आवश्यक पौष्टिक तत्वों की कमी होने से उन्हें भाँति-भाँति के रोग घेर लेते हैं। गंदे स्थान एवं अशुद्ध वायु का भी कम प्रभाव नहीं पड़ता। गर्मी-सर्दी से सुरक्षा का समुचित प्रबंध न होने से भी वे बीमार पड़ जाया करते हैं। संक्रामक रोगों के फैलने पर पशुपालक पहले से कोई ध्यान नहीं देते और रोग के प्रतिरोध के अभाव में पशु बीमार पड़ जाते हैं। इसी प्रकार अधिक श्रम, आकस्मिक दुर्घटना तथा चोट-चपेट भी रोग का कारण होते हैं। हमने प्रत्येक रोग के साथ उसके कारण दिये हैं जिससे पशुपालक उन रोगों से पहले से ही सचेत रह सकें।

रोगी पशु के लक्षण—हमने प्रत्येक रोग के साथ उसके लक्षण दिये हैं। यहाँ कुछ ऐसे लक्षणों का उल्लेख है जिनसे रोगी पशु की पहिचान की जा सके।

(१) पशु पागुर अथवा जुगाली करना बंद कर देते हैं किंतु स्मरण

रहे कि जिन पशुओं के दोनो ओर दाँत होते हैं वे जुगाली करते ही नहीं जैसे घोड़ा और गधा। रोग-ग्रस्त होने पर गधे रेंकना बन्द कर देते हैं और घोड़े अपनी स्वाभाविक आदत 'फुर-फुर' की आवाज करना बंद कर देते हैं।

(२) दूध देनेवाले गाय, भैंस आदि पशु दूध देना बंद कर देते हैं।

(३) पशु उदास दिखाई पड़ते हैं और अन्य पशुओं से अलग रहने की इच्छा प्रकट करते हैं।

(४) वे बार-बार हुँकार भरते और उठते-बैठते हैं।

(५) चारे-दाने का त्याग करना भी एक प्रमुख लक्षण है।

(६) आँखें लाल या पीली हो जाती हैं और आँख-नाक से पानी आता है। लाल आँखों से गर्मी, पीली से यकृत दोष और सफेद से सर्दी का प्रकोप समझना चाहिए।

(७) देह गर्म हो जाती है और प्राय: शरीर के विभिन्न अंग सूज आते हैं।

(८) गोबर पतला या सूखा तथा बदबूदार होना अथवा अनियमित होना भी रोगी पशु का लक्षण है। काला पतला व बदबूदार गोबर आहार की खराबी या गरिष्ठता का परिचायक है। सूखे गोबर से कब्ज समझना चाहिये। छोटी-छोटी मेंगनी के रूप में गोबर होना कोष्ठकाठिन्य अथवा यकृत् दोष सिद्ध करता है।

(९) मूत्र बंद होना या अनियमित होना भी रोग का परिचायक है। यदि मूत्र बिलकुल न हो तो समझना चाहिये कि पशु से काम अधिक लिया गया है और यदि लाल हो तो गर्मी और सफेद हो तो सर्दी का प्रकोप समझना चाहिये।

(१०) शरीर के रोंये खड़े हो जाते हैं और प्राय: पशु छूने पर शरीर सिकोड़ते नहीं हैं।

(११) प्राय: जीभ में छाले भी पड़ जाते हैं।

संक्रामक रोग

माता (Rinderpest)

इसे माता, पोका, दौरा, मानरोग, चेचक, गूटी, वसन्त (बंगाल), पेया (मद्रास), पिचीनोव (बम्बई) और मतहाई आदि विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। यह बीमारी २४ घण्टे से लेकर १६ दिन तक और प्राय: ३ से लेकर ६ दिन तक रहती है।

कारण---इसके कीटाणु मुँह, नाक, आँख, स्तनछिद्र, नेत्र, जल, दूध, पेशाब और कफ आदि के साथ शरीर में प्रवेश करते हैं, जिससे आंतों और पचन संस्थानों पर इसका कुप्रभाव होता है। यह कीटाणु रोगी पशुओं के गोबर, जूठन, रक्त, लार एवं मृत पशुओं की खाल से फैलते हैं।

लक्षण—पहले तीव्र ज्वर (१०५ से १०७ डिग्री) आता है और पशु चारा छोड़ देता है। आँखों से जल और मुँह से लार गिरने लगती है। शरीर में कम्पन होता है और कमर टेढ़ी पड़ जाती है। रक्तमिश्रित पतले दस्त आते हैं। नाड़ी दुर्बल एवं चंचल होकर ६० से १२० बार प्रति मिनट चलती है। मुँह में लालिमा आ जाती है और जिह्वा के नीचे व मसूढ़ों एवं आंतों में और प्राय: आँख व नाक में भी लाल-लाल दाने निकल आते हैं। आगे के दाँत हिलने लगते हैं। मैदानी पशुओं की अपेक्षा पहाड़ी पशु अधिक बीमार होते हैं और ६० प्रतिशत की मृत्यु हो जाती है। प्राय: शरीर के अनेक अंगों में गिल्टियाँ भी निकल आती हैं जो पक भी जाती हैं और सूखकर अच्छी भी हो जाती हैं।

चिकित्सा-सूत्र—पेट साफ करनेवाली और उत्तेजक औषधियाँ दें।

प्रतिरोधक चिकित्सा—(१) बीमारी होने से पूर्व ही नीरोग जानवरों को निकट के पशुचिकित्सक से "गोट वीरस या सीरम" साइमल्टेनियस मेथड से रिन्डरपेस्ट का इन्जेक्शन लगवा देने से यह

बीमारी जीवन भर नहीं होती । इससे गर्भवती गायों आदि के न तो गर्भपात ही होता है और न उनका दूध ही कम होता है ।

(२) ८४ कालीमिर्च और बिना फूली कटेली की जड़ भलीभाँति महीन पीसकर देने से इसके आक्रमण की कम सम्भावना रहती है ।

(३) जब रोग फैले तो एक सप्ताह तक दो-दो छटाँक कच्ची हल्दी और उतना ही गुड़ नित्य तीन बार देने से लाभ होता है ।

(४) नित्य आधा पाव करेले के पत्तों का रस एक सप्ताह तक देना लाभप्रद है ।

होम्योपैथिक—रोग फैलने पर सरसीनिया (Sarsiniahey) ३०—२००, अथवा वैक्सिनिनम (Vaccininum) २००—१००० देने से रोग का असर अधिक नहीं होता ।

नोट—प्रत्येक हालत में इन्जेक्शन अवश्य लगवा दें ।

चिकित्सा—जैसे ही कब्ज के लक्षण दिखें प्रतिदिन एक से दो छटाँक एप्सम साल्ट (Epsom salt) अथवा खाने का नमक दो बार देना चाहिये । हलके गर्म जल व तेल की पिचकारी प्रतिदिन दो-तीन बार देना भी लाभप्रद है । इसमें कोई भी तेज़ जुलाब न देना चाहिये । एक या दो ड्राम कुनेन नित्य देने से कभी-कभी लाभ होता है ।

यदि २४ घंटे से अधिक समय तक दस्त होते रहें तो आधी छटाँक खड़िया मिट्टी, चौथाई छटाँक कत्था और उतनी ही सोंठ, १ ड्राम अफीम तथा एक छटाँक शराब भलीभाँति मिलाकर दस छटाँक अलसी के माँड़ में, जब तक दस्त बन्द न हो जाँय प्रातः व सायं देते रहें ।

एक रात और एक दिन बराबर कफ अथवा रक्त निकलते रहने पर (१) चार आने भर धतूरे के बीज, (२) बारह आने भर कपूर, (३) बारह आने भर शोरा, (४) दो छटाँक शराब में से कोई एक औषधि खिलावें । कफ आदि निकलना बन्द होने के एक दिन बाद चाखरी का चूर्ण पौन छटांक, छह आने भर अफीम, बारह आने भर ढाक के बीज

सात तोला चिरायता, एक छटाँक शराब एक सेर भात के माड़ में मिलाकर देने से लाभ होता है।

चेचक के दाने दिखाई देने के पूर्व गुड़ में सेमल के बीज मिलाकर देना लाभप्रद है। मात्रा—प्रथम दिन पहली बार २५, दूसरी बार १८, और तीसरी बार १० बीज चार-चार घंटे के अंतर से, दूसरे दिन पहली व दूसरी बार क्रमशः १५ व १० बीज बारह घंटे के अन्तर से, और तीसरे दिन केवल १० बीज देना चाहिये। स्मरण रहे कि चेचक निकल आने पर यह औषधि लाभ नहीं करती।

जिह्वा में सूजन होने पर गर्म जल में कार्बोलिक एसिड मिलाकर या नीम की पत्ती के उबले हुए पानी से मुँह नाक व चेहरा धो देना चाहिये। प्रायः सड़न दूर करनेवाली औषधियों से भी लाभ होता है। आधे से एक ड्राम कार्बोलिक एसिड दो क्वार्ट पानी में और दो से चार ड्राम परमेगनेट आफ पोटाश उतने ही पानी में मिलाकर प्रयोग करें।

उपरोक्त चिकित्सा के अतिरिक्त यहाँ कुछ अनुभूत नुस्ख़े दिये जाते हैं जो इस रोग में लाभप्रद सिद्ध हुए हैं—

माता की बीमारी में ज्वर उतारने के लिये सवातोला शोरा, आधा तोला काला सुर्मा, सवा तोला गंधक, एक छटाँक काला नमक, आध पाव देशी शराब और दो सेर पका हुआ जल देना लाभप्रद होता है।

(१) रात्रि में मिट्टी के किसी पात्र में पाव भर आँवला भिगोकर प्रातः छान लें। फिर प्रातः उस जल में पावभर दही एक छटाँक ईसबगोल और दो छटाँक शक्कर डालकर दिन में दो बार खिलावें। आँवले के अभाव में धनिया का पानी काम में लाया जा सकता है।

(२) बाँसी घास के बीज एक सेर महीन पिसवाकर दही या मट्ठे के साथ प्रातः एवं सायंकाल आधा-आधा पाव देने से लाभ होता है।

(३) सेमल के काँटे, चिरचिरा की जड़, जचवालता की जड़ चार-चार तोले लेकर खरल में चूर्ण कर दिन में २० ग्रेन के हिसाब से तीन बार देने से तीन दिनों में लाभ स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

(४) एक औंस कपूर और दो औंस कलमी शोरा एक पाव देशी शराब में मिलाकर पिलाना लाभप्रद है।

(५) तीन छटाँक त्रिफला (आँवला, हर्र, बहेड़ा) दो सेर जल में पकावें। जब पानी पककर चौथाई रह जाय तो उसे पशु को पिलावें।

(६) दो सेर जल में एक-एक छटाँक परवल व नीम के पत्ते उबालें। आधा सेर जल शेष बचने पर आधी-आधी छटाँक इन्द्रजौ और मुलेठी पीसकर मिला दें। यह काढ़ा देने से पशु को कै होती है और फिर रोग शांत हो जाता है।

(७) छतिवन, अडूसा, गिलोय, खैर, नील और बेत की छाल, परवल का छिलका और छिल्के सहित हल्दी दो सेर जल में पकाकर उसका आधा सेर काढ़ा तैयार कर लें। इसी प्रकार नीम और अड़ूसे की छाल, गिलोय और कटेरी के कांटे का काढ़ा पिलावें। इसके जल से पशु को स्नान कराने से भी लाभ होता है।

(८) गिलोय, नागरमोथा, चिरायता, परवल के पत्ते, नीम की छाल, पित्तपापड़ा, अड़ूसे की छाल और कुटकी, इनमें से प्रत्येक एक-एक तोला लेकर डेढ़ सेर जल में पकाकर आध सेर काढ़ा रहने पर पिलावें।

होम्योपैथिक—रोग की प्रारंभिक अवस्था में जब पशु चारा-दाना छोड़ दे और दुर्गंधपूर्ण दस्त आने लगें तो एकोनाइट नैप (Aconite nap) और आर्सेनिक अल्बम् (Arsenic alb) को क्रमशः ३-३ घण्टे बाद १०-१० बूँद दें। फुन्सियाँ निकलने पर ऐंटिम टार्ट (Antim tart) तीन-तीन घण्टे बाद दें। घाव सड़ने लगें तो एचिनेसिया (Echinesia) ३× का व्यवहार करें। रोग के लक्षण अधिक गम्भीर होने पर, जब पशु के नेत्र रक्तिम हो जायें, ज्वर तीव्र हो, शरीर का रक्त विषाक्त जान पड़े और दुर्गन्धयुक्त काले व पतले दस्त आवें तो पाइरोजेनम (Pyrogenum) का सेवन कराना चाहिये। गिल्टियों के दब जाने पर कपूर का सत (Spirit Camphor) १० से २० बूँद पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के

अन्तर से और दांतों के दब जाने पर जब खुजली हो तो सलफर (Sulphur) दें।

पथ्य—खाने के लिये भली-भाँति पका हुआ चावल या उरद का गाढ़ा दलिया दें। जब दस्त आने लगें तो कुछ गुनगुना जल दें। पशु के निकट सेंधा नमक के ढेले रख देने चाहिये, जिसे वह चाटा करे। अच्छे हो जाने पर भी कड़ा, सूखा और रेशेदार चारा न दें। पशु को दूब जैसा मुलायम चारा भी दिया जा सकता है।

सावधानी—रोगी पशु को कपड़ा इत्यादि ओढ़ाकर खूब गर्म रखना चाहिये। उसके अच्छा हो जाने या मर जाने पर ओढ़न व बिछावन आदि सब जला देने चाहिये।

जहरी बुखार (Anthrax)

इसे गड़ी, सूत, कारबोन, स्प्लोनिक-एपाप्लेक्सी, दरका, खुरदवा और ओदरो आदि नामों से पुकारा जाता है। यह रोग हाथी, घोड़ा, ऊँट और अन्य चौपायों के अधिक होता है किंतु कुत्तों और सुअरों को बहुत कम होता है। यह अत्यंत वेग से फैलने वाली छूत की बीमारी है।

कारण—यह रोग रक्तविकार से होता है। खुर्दबीन से देखने योग्य अत्यंत सूक्ष्म एक विशेष कीड़े के रक्त में प्रवेश करने से यह विकार उत्पन्न होता है। यह कीड़े मल-मूत्र और मवाद से, मनुष्यों, बरतनों या चारे-पानी के संसर्ग द्वारा दूसरे पशुओं में भी फैल जाते हैं।

लक्षण—यह रोग (१) अंत: और (२) बाह्य, दो प्रकार का होता है। प्रथम प्रकार का रोग होने पर शरीर पर लक्षण स्पष्ट प्रकट नहीं होते। दूसरे प्रकार के रोग में लक्षण बाहर से ही स्पष्ट हो जाते हैं।

आन्तरिक रोग के लक्षण—तीव्र ज्वर, नाड़ी की तीव्रता, बेचैनी, नेत्रों में उभार, नेत्रों की भीतरी झिल्ली में लालिमा, नेत्रों में घबराहट, शरीर पर मांस का फड़कना, काले रंग का रक्त मिश्रित गोबर, मूत्र में

गहरी कालिमा और पशु का लड़खड़ाना आन्तरिक रोग के लक्षण हैं। प्राय: पशु की नाक से पीव निकलता है। कभी-कभी यह रक्तमिश्रित होता है। यह भी संभव है कि पशु के बवाशूल का सा शूल उठे और पेट वायु से फूल जाय। काँखने पर प्राय: पशु के काँच भी निकल आती है।

बाह्य रोग के लक्षण---एक कठोर उभरी हुई सूजन विशेष रूप से गले और पेट पर स्पष्ट परिलक्षित होती है। इसे देखने से मालूम होता है कि इसमें मवाद सा भरा है। साधारणतया यह सूजन शरीर के सभी अंगों पर होती है। गले में सूजन होने पर पशु को सांस लेने में बड़ी कठिनाई होती है। कभी-कभी तो साँस बिलकुल नहीं ले पाता। कभी-कभी इसमें सड़न भी प्रारंभ हो जाती है।

चिकित्सा सूत्र---ऐसी औषधियाँ पिलाई जायँ जो सड़न को रोकें और शरीर को शक्ति पहुँचावें।

प्रतिरोधक चिकित्सा---वर्षा से पूर्व प्रतिवर्ष Stock के साथ बोवाइन ऐंथ्रैक्स स्पोर वेक्सीन का टीका (Vaccination of stock with Boviene Anthrax Spore Vaccine) लगवा दें। रोग के फैलने पर ऐन्टी ऐन्थ्रैक्स सीरम (Anti-anthrax serum) का इन्जेक्शन लगवा दें।

चिकित्सा---इसमें लाभ कम ही होता है। बाह्य ऐन्थ्रैक्स होने पर सूजन को गर्म लोहे से दाग देते हैं। इसमें निम्न दवायें लाभप्रद हैं—

(१) आधो छटाँक तारपीन का तेल दस छटाँक अलसी के तेल में मिलाकर दें।

(२) आधी छटाँक फिनाइल ढाई सेर जल में मिलाकर दें।

होम्योपैथिक—प्रारंभिक दशा में पशु के बीमार पड़ते ही आर्सेनिक (Arsenic A) २००-१००० देना लाभप्रद है। जब काले रंग के रक्त से मिला हुआ गोबर हो तो लैकेसिस (Lachessis) २००-१००० का प्रयोग करें। अधिक उग्र हो जाने पर एचिनेसिया (Echinasia दें।

सावधानी—रिन्डरपेस्ट के समान।

पथ्य—बीमार दशा में प्रायः बेहोश रहने के कारण पशु खाता-पीता कम ही है। कुछ ठीक होने पर दूध, चावल का माड़ और गेहूँ बाजरे की दलिया देनी चाहिए। पूर्ण स्वस्थ हो जाने पर कोमल घास दें।

गलाघोंटू

(Haemorrhegic Septicaemia)

यह एक तीव्र संक्रामक खून का रोग है। इसे गरगटी, जहरबाद, गुर्रा, घोंटू, इकहा तथा पसाजा आदि नामों से भी पुकारते हैं। अंग्रेजी में इसे 'मेलिग्नेण्ट सोर थ्रोट' (Melignant sore throat) भी कहते हैं। यद्यपि यह रोग सुअर, घोड़े और गधे आदि सभी पशुओं को होता है, किंतु भैंसे को विशेष प्रभावित करता है। यह वर्षा ऋतु में और उसके बाद होता है। आश्विन के महीने में यह रोग विशेष रूप से होता है। रोग दो-तीन घण्टे से लेकर दो-तीन दिन तक रहता है। ८० प्रतिशत पशु मर जाते हैं।

उत्पत्ति के कारण—यह रोग रक्तदोष से होता है जिसका कारण एक कीड़ा है। सड़ी-गली छालें अथवा चारा-पानी देने से रक्त-विकार हो जाता है। किसी-किसी चरागाह में प्रायः जहाँ पानी भरा रहता है किसी ऋतु में पशु के चरने से अथवा रोगी पशु के सम्पर्क से भी यह रोग हो जाया करता है।

लक्षण—तीव्र ज्वर के साथ कण्ठ गोलाई लिए हुए सूज आता है। मुँह से लार बहुत गिरती है और जिह्वा सूख जाती है। पशु को लार निगलने और साँस लेने में बड़ा कष्ट होता है। नासिका एवं नेत्रों के भीतर की झिल्ली का रंग लाल हो जाता है। साँस लेने में घर्र-घर्र स्वर दूर से ही सुनाई पड़ता है। नाक से पीला मवाद निकलता है। सूजन

छूने से गरम और कठोर प्रतीत होती है तथा गले से बढ़कर नीचे तक फैल जाती है। गले और जिह्वा की सूजन अधिकतर दिखाई पड़ती है। जिह्वा, फेफड़े और आँत में खून सा भरा ज्ञान पड़ता है। कभी-कभी गोबर पतला और रक्त मिश्रित होता है और मूत भी रक्तिम वर्ण का हो जाता है। अन्तिम दशा में दुर्गन्ध आने लगती है, और पशु की जीभ बाहर निकल आती है। इसमें पीब से भरे हुए उभरे घाव दिखाई पड़ते हैं। श्वास-गति बढ़ते-बढ़ते बंद होकर पशु की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा-सूत्र—रोग होते ही जुलाब देकर विष-निकालना आवश्यक है जिससे कि कण्ठावरोध और श्वास बंद न हो। यदि पशु दवा पीने के योग्य है तो सड़न रोकने और शक्ति बनाये रखनेवाली औषधियाँ दी जायँ। मुँह व गले को धोवें और सूजे हुए भाग को लोहे से दाग दें।

प्रतिरोधक चिकित्सा---वर्षा के आरंभ होने के पूर्व ही प्रतिवर्ष एच० एस० वैक्सीन का टीका प्रत्येक पशु के लगवा दिया जाय। वैक्सीन की मात्रा सामान्य पशु (६०० पौंड) के लिए ५ सी० सी० और अधिक भार वालों के लिए इसकी दूनी मात्रा देनी चाहिये। जब यह रोग फैले तो (Incontact animals) के 'ऐन्टी हैमोरेजिक सेप्टेसिमिया सीरम का टीका लगाया जाय और बाकी पास-पड़ोस के पशुओं को टीका लगाया जाय।

होम्योपैथिक—रोग के फैलने की सूचना मिलते ही आर्सेनिक Arsenic al) २००-१००० दें। ६० प्रतिशत पशुओं को लाभ होता है।

चिकित्सा—यह रोग इतनी तीव्र गति से बढ़ता है कि किञ्चित् मात्र असावधानी करने पर भी रोग असाध्य हो जाता है। आरंभ में ही यदि कण्ठावरोध के कारण पशु को कष्ट न हो तो निम्न कोई जुलाब देकर पेट साफ कर देना चाहिए। लाहौरी नमक या जुलाब का नमक (Epsom salt) ६ छटाँक, मुसब्बर ½ छटाँक, सोंठ ½ छटाँक, शीरा ८ छटाँक-सवा सेर गर्म पानी में मिलाकर गुनगुना करके दें। यदि इस योग

में कठिनाई हो तो अलसी का तेल और मीठा तेल ५-५ छटाँक, जमाल गोटा का तेल ३० बूँद, एक में मिलाकर दें अथवा २ तोले गंधक का चूर्ण तथा १ तोला सोंठ का चूर्ण आध सेर तीसी या भात के माड़ के साथ खिलायें। एनिमा देने से भी लाभ पहुँचता है। दो सेर गर्म जल में साबुन के झाग को उठावें और इसमें १ छटाँक सरसों का तेल डाल-कर पशु की गुदा में पहुँचावें। इस प्रकार एनिमा लगाने से पशु के दस्त आते हैं और प्रायः पशु क्रमशः अच्छा होने लगता है।

इस रोग में सड़न रोकनेवाली औषधियाँ बहुत लाभप्रद सिद्ध होती हैं। उसके बाद सड़न रोकनेवाली औषधियाँ देनी चाहिये। सड़न रोकने के लिए ढाई सेर जल और आधी छटाँक फिनाइल मिलाकर दें। कारबोलिक एसिड और सैलीसिलिक एसिड देने से भी लाभ होता है।

तत्पश्चात् रोगी पशु को उत्तेजक औषधियाँ दें। दो छटाँक देशी शराब, ½ छटाँक सोंठ और ¼ छटाँक पिसी हुई कालीमिर्च सवा सेर जल में मिला-कर दें। इससे पशु को उत्तेजना भी मिलती है, शक्ति भी प्राप्त होती है। जुलाब देने के बाद इसे अवश्य देना चाहिये। इस योग के अभाव में ६ आने भर धतूरे का चूर्ण, बारह आने भर कपूर, आधी छटाँक नमक, और आध पाव भात के माड़ में मिलाकर रोगी पशु को पिलावें।

मुँह और गले के भीतर के घावों को धोना अत्यन्त लाभप्रद है। सवा तोला फिटकरी और १० छटाँक पानी के घोल से दिन में कई बार मुँह धोवन कर देना चाहिये। इसमें थोड़ा गुड़ मिला देना भी अच्छा रहता है।

¼ छटाँक जमालगोटे का तेल, २ छटाँक तीसी का तेल एक में मिला कर रोगी पशु के जबड़े और गले पर मलने से भी लाभ होता है।

प्रायः लोग गला अथवा अन्य स्थान को जहाँ सूजन होती है, लोहे से दाग देते हैं। यदि सावधानी से काम लिया जाय तो इससे लाभ होता है। सूजे हुए स्थान पर गरम दहकते हुए लोहे से उस पर लकीरें बना देते हैं। इस समय यह सावधानी अवश्य रखें कि लकीरें अधिक गहरी न हो जाँय

अन्यथा पक जाने की आशंका रहती है। दागने के बाद उत्तेजक औषधि अवश्य देनी चाहिये।

नोट—प्राय: कण्ठ में अवरोध होने पर श्वास रुक जाती है। और ऐसे पशु की मृत्यु हो जाने की आशंका होती है। ऐसी दशा में निकट के पशु-चिकित्सक को बुलाकर दिखा दें। वह गले के बीच के निकट नर-खरे में छेद कर देता है। इस प्रकार पशु साँस लेने लगता है और प्राय: बच जाता है। मुँह व कण्ठ के घावों को अच्छा करने के लिये किसी लौहपात्र में गंधक अथवा अलकतरा रोगी के समक्ष जलाकर हवादार स्थान में रख दें। इससे पशु को आराम होता है और घाव अच्छे हो जाते हैं।

होम्योपैथिक—कण्ठावरोध होने, दम घुटने और दुर्गंधपूर्ण दस्त आने पर लैकेसिस (Lachesis) २००, १००० का व्यवहार करें। नाक से मवाद गिरने पर बेलाडोना और मर्क्यूरियस प्रोटो आयोडेट्स (Mercurious proto Iodetus) क्रम से पाँच से दस बूँद दो-दो घण्टे के बाद देना चाहिये। यदि इनसे विशेष लाभ न हो तो बैप्टीशिया (Baptisia) २००, १००० और आर्सेनिक अल्बम क्रम से दो घन्टे पर ५ से १० बूँद तक देनी चाहिये।

सावधानी—यह संक्रामक रोग है, इसका सदैव ध्यान रहे। औषधि पिलाते समय इसका सदैव ध्यान रखें कि पशु की सांस रुक न जाय।

पथ्य—कंठ में कष्ट होने पर पशु कुछ खाता ही नहीं है। आराम मिलने पर दूध, नमक के साथ चावल का माड़, गेहूँ, जौ आदि की पतली दलिया देनी चाहिये। पीने के लिये कुँए का ताजा और स्वच्छ जल दें।

———

खुर तथा मुँह पकना

(Foot and Mouth desease)

इसे मुँहपका, खुरपका, खुरिया, खुरहा, खोरा रोरा, ऐशू (बंगाल) मुँहखुर, भूयोग (मद्रास) आदि नामों से पुकारते हैं। अंग्रेजी में इसे एपिजोटिक (Epigootic) और एप्था (Aptha) कहते हैं। यह एक अत्यंत शीघ्र फैलनेवाली छूत की बीमारी है और प्राय: जुगाली करनेवाले पशुओं के ही होती है। इसके लक्षण एक से तीन दिन में प्रगट होते हैं। इस रोग से पशु में बड़ी दुर्बलता आ जाती है और असावधानी करने पर प्राय: मर जाता है। प्राय: यह रोग मनुष्यों में भी फैल जाता है।

कारण---पशुओं को गन्दे और कीचड़ वाले स्थानों में बाँधने से यह रोग हो जाया करता है। संसर्ग से यह अन्य पशुओं को भी हो जाया करता है।

लक्षण---पशु की देह थरथराने लगती है और जाड़ा देकर तीव्र ज्वर हो आता है। तीव्र ज्वर होने के साथ ही मुँह, मसूढ़ों, होठों और जीभ के ऊपर छोटे-छोटे छाले पड़ जाते हैं जो बाद में घाव के रूप में परिणत हो जाते हैं। सींग, मुँह और पाँव गर्म हो जाते हैं और मुँह से लार गिरने लगती है। मुँह के पश्चात् यह छाले व घाव खुरों के मध्य पड़ जाते हैं और अंत में ऊपर का खुर गिरकर अलग हो जाता है। कभी-कभी गायों के ऐन व थन पर भी छाले पड़ जाया करते हैं। घाव पर मक्खी बैठ जाने से कीड़े पड़ जाते हैं। मुँह में छाले होने के कारण पशु चारा छोड़ देता है और पैर में होने के कारण लँगड़ाने और पैर पटकने लगता है। जब यह बीमारी सुअरों को हो जाती है तो वे जोर-जोर से,चिल्ला कर अपनी व्यथा प्रगट करते हैं। दूध देनेवाले पशु का दूध बहुत कम हो जाता है। भेंड़-बकरियों को यह रोग अधिक होता है। और कम आयु

के पशु ही अधिकतर इससे मरते हैं। प्राय: गाभिन पशुओं को गर्भपात भी हो जाया करता है। यह रोग दस-पन्द्रह दिनों में अच्छा होता है।

चिकित्सा सूत्र---स्वच्छता रखें, मुँह-धोवन व पाँव-धोवन करें और ऐसी औषधियाँ दें जो पेट साफ करें। इसके बाद पाचक औषधियों का व्यवहार करें।

प्रतिरोधक चिकित्सा---इस रोग के टीके की दवा अभी कोई तैयार नहीं हुई है। इधर क्रिस्टल वायलेट पालीवेलेन्ट वैक्सीन (Crystal violet polyvalent vaccine) के प्रयोग हो रहे हैं किन्तु इसका प्रयोग सर्वसाधारण द्वारा न होना चाहिये क्योंकि यह अभी प्रयोगात्मक स्थिति में ही है।

चिकित्सा--- पशु को किसी स्वच्छ एवं ऊपर से छाये हुए हवादार स्थान में बाँधना चाहिये। नीचे की भूमि बिलकुल साफ और कीचड़-रहित हो। मुँह को हल्के गर्म जल से धोने के पश्चात् सवा तोला फिट-करी और पुटाश, दस छटाँक पानी एक में मिलाकर उससे मुँह और कण्ठ (हलक) को अन्दर से धोयें। यह सर्वश्रेष्ठ औषधि है। इसके अभाव में आँवले को पानी में भिगोकर उससे मुँह धोवें और पिलावें। बबूल की छाल को पानी में उबालकर उसका भी उपयोग किया जा सकता है। गर्म पानी में बोरिक ऐसिड पाउडर मिलाकर सेंक व धोवन करने से अत्यधिक लाभ होता है।

मुँह के छाले धोने के बाद सेंक दें और घावों पर सुहागा तथा शहद १ और ४ के अनुपात से मिलाकर लगावें। धुलाई व सिंकाई के पश्चात् १ और ४ के अनुपात से कपूर और मीठा तेल मिलाकर घावों में लगाने से भी लाभ होता है। छालों में बोरो ग्लैसरीन का भी प्रयोग किया जाता है।

ज्वर होने पर पुटाश नाइटर, एमोनियम नाइटर और मैगसल्फ दें। २ डाम कपूर, १ तोला शोरा, ढाई तोला देशी शराब लें। कपूर को शराब

में घोल लें और बाद में शोरा मिलाकर, सवा सेर ठंढे पानी में मिला कर पिलाने से भी ज्वर कम हो जाता है। इसी प्रकार ज्वर उतारने के लिये लाहौरी नमक ढाई तोले, शोरा सवा तोले, शीरा २ छटाँक, सवा सेर जल में मिलाकर देना लाभप्रद है।

पेट साफ करने के लिये (१) ६ छटाँक एप्सम साल्ट या लाहौरी नमक, ½ छटाँक मुसब्बर और उतनी ही सोंठ, १ पाव शीरा सवा सेर गर्म जल में मिलाकर गुनगुना करके पिलावें। (२) आम की कली आधा पाव, पीली कटेली का फूल १ छटाँक एक में औटाकर काढ़ा पिलावें। (३) एक सेर पुराना गुड़ तथा १ पाव सौंफ एक सेर गर्म पानी में औटकर पिलावें।

पाँवधोवन---परों को फिनाइल या कोपर सल्फ अथवा कपड़ा धोनेवाले सोडे के घोल से धोयें। यदि पैरों में कीड़े पड़ गये हों तो फिनाइल लगावें। इसमें कपूर का तेल, मिट्टी का तेल या तारपीन का तेल भी लगाने से कीड़े मर जाते हैं। यह संक्रामक रोग है, अतएव गाँव में फुटबाथ* बनवाना लाभदायक होगा। प्रायः लोग बेर के पत्ते उबाल-कर उसके जल से भी पैर धोते हैं।

शरीर के ऊपरी भाग के दाने फूट जाने पर पशु को बड़ा कष्ट होता है और मक्खियाँ घाव पर बैठती हैं। इनमें निम्न में से कोई एक दवा लगायें। (१) ढाई तोले बोरिक एसिड में डेढ़ तोला आइडोफार्म मिलाकर उसमें १० तोले वैसलीन मिलाकर मरहम तैयार कर लें और लगावें। (२) २ छटाँक खड़िया मिट्टी, आधी छटाँक कोयला, ¼ छटाँक फिटकरी और ¼ छटाँक नीला थोथा (तूतिया) एक में पीसकर व मिलाकर सूखी दवा तैयार करके घावों पर छिड़क देने से लाभ होता

---

* फुटबाथ में १२ फुट लम्बा, ३ फुट चौड़ा, १ फुट गहरा और दोनो ओर तीन-तीन फुट का ढाल होना चाहिये। इसमें २ प्रतिशत फिनाइल अथवा कोपर सल्फ का घोल भर दें और प्रातः-सायं पशुओं को इसी से होकर निकालें।

है और मक्खियाँ भी घाव पर नहीं बैठती हैं। (३) भखरा सिन्दूर और कालीमिर्च का चूर्ण भैंस के घी में मिलाकर घाव पर लगाने से भी लाभ होता है। (४) तूतिया और अलकतरा १ और १० के अनुपात से मिलाकर घाव पर पट्टी बाँध दें। (५) १ भाग कपूर, ५/४ भाग तारपीन का तेल, ४ भाग तीसी का तेल भली प्रकार मिलाकर घाव पर लगावें। घावों के बड़ा होने पर थोड़ा-सा तूतिये का चूर्ण भी मिला लेना चाहिये। मिट्टी आदि के बचाव के लिये बाद में पट्टी बाँध दें। (६) चार ड्राम कार्बोलिक एसिड और आधी छटाँक ग्लैसरीन आध सेर जल में मिलाकर लगाने से भी लाभ होता है।

होम्योपैथिक—जैसे ही रोग का आभास मिले पशु को आर्सेनिक एलबम (Arsenic Alb.) २०० दें। बरसात के दिनों में यदि निरन्तर पानी में रहने के कारण रोग हुआ है तो रसटाक्स (Rhustox) २०० दें। छाले पड़ना आरम्भ होने और मुँह से लार गिरने पर मर्क्यूरियस (Merc. Sol) २०० का व्यवहार करें। पीब-मवाद निकालने के लिये कैलेण्डुला (Calendula Ext.) 6, ३० का व्यवहार करें। इससे मवाद नहीं रहने पाता। जब छाले फूटने लगें और उनसे दुर्गन्धयुक्त पीब निकलने लगे तो साइलीसिया (Silicia) २०० दें। घाव के सड़ने और दुर्गन्ध बढ़ने पर एचिनेशिया (Achinasia Ext.) 3x का व्यवहार करें। एचिनेशिया और कैलेंडुला का भीतरी और बाह्य दोनो ही रूप से प्रयोग करना चाहिये।

सावधानी—प्राय: लोग रोगग्रस्त होने पर भी बैल आदि से काम लिया करते हैं। ऐसी दशा में उनके खुर गिर जाते हैं। गायों के थनों में छाले पड़ने पर भी दुहाई करते रहने पर वे भी फूल जाते हैं। रोगी पशुओं का दूध उनके बछड़ों को भी न पिलाना चाहिये अन्यथा वे भी बीमार हो जाते हैं।

पथ्य—खाने के लिये नर्म हरी घास, चोकर, मांड़ या सहज पचने

वाली वस्तु देनी चाहिये। माँड़ में एक-दो बार एक से लेकर डेढ़ छटाँक तक शीरा या राब या गुड़ और आधी छटाँक मामूली नमक मिलाकर भी दे सकते हैं।

लँगड़ा बुखार (Black Quarter)

इसे स्थान-भेद से भंग (बंगाल), गोली (पंजाब), जहरबाद, यकटंगा, सुजवा, लंगड़िया और चुरचुरिया आदि नामों से जाना जाता है। अंग्रेजी में इसे 'ब्लैक लेग', 'क्वार्टरिल' और 'कार बोन' के नाम से भी पुकारते हैं। भैंसों, गायों और भेड़ों के विशेषकर ६ माह से २ वर्ष तक के पशुओं के यह रोग अधिक होता है। पशु में इसके लक्षण दो से चार दिन में प्रगट हो जाते हैं।

कारण---इसके कीटाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं जो कि प्राय: मुँह या टाँग के किसी छोटे घाव या छीरे से शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। यह बदन के रेशों में बढ़ता और पशु के क्षीण होते ही अपना प्रभाव दिखाता है।

लक्षण---सर्व प्रथम १०५-१०६ डिग्री के लगभग तीव्र ज्वर हो आता है। घुटनों के नीचे के भाग को छोड़कर आगे और पीछे जांघ, कंधा, गर्दन, धड़ तथा अन्य स्थानों में शीघ्रता से बढ़नेवाली सूजन हो आया करती है। कभी-कभी यह सूजन ऊपर न होकर बदन के अंदर ही होती है। इसमें काला रक्त और गैस (हवा) भरी रहती है और सड़े हुए मक्खन के समान गंध आती है। सूजन में चरचराहट होती है और उसे काटने पर दुर्गंधयुक्त झागदार रक्त निकलता है। पशु पिछले पैर से लँगड़ाने लगता है और अंत में साँस लेना कठिन हो जाता है और पशु मर जाता है। पशु के पेट में बवाशूल का सा दर्द भी उठता है।

चिकित्सा सूत्र—आरंभ में पशु को तेज जुलाब देकर अथवा एनिमा से पेट साफ़ कर देना चाहिये और फिर ऐसी औषधियाँ दें जो शक्ति को बढ़ाने के साथ-साथ उत्तेजक हों और सड़न को रोकें। सूजन को दाग दें।

प्रतिरोधक चिकित्सा—जिन स्थानों में यह रोग बराबर होता है वहाँ प्रतिवर्ष वर्षा के पूर्व वैक्सीन का टीका लगवाना चाहिये। जब बीमारी फैले तो उस समय प्रभावित क्षेत्र के सभी पशुओं के ऐन्टी ब्लैक क्वार्टर सीरम (Anti-black-quarter serum) का टीका लगवा लें।

चिकित्सा—जुलाब के लिये लाहौरी नमक या जुलाब का नमक (Epsom Salt) ६ छटाँक, मुसब्बर १/४ छटाँक, सोंठ १/४ छटाँक और शीरा १ पाव सवा सेर गर्म जल में मिलाकर गुनगुना करके पिलायें। उक्त योग न मिलने पर अलसी का तेल और मीठा तेल पाँच-पाँच छटाँक और जमालगोटा का तेल ३० बूँद एक में मिलाकर दें।

दो सेर गर्म जल में साबुन का झाग उठाकर उसमें १ छटाँक सरसों का तेल डालकर एनिमा का प्रयोग करें। इससे दस्त आयेंगे और पेट साफ हो जायगा।

सड़न रोकने के लिये १/२ छटाँक फिनाइल ढाई सेर पानी में मिलाकर दें या आधी छटाँक तारपीन का तेल १० छटाँक अलसी के तेल में मिलाकर भी दे सकते हैं। सवा तोला फिटकरी १० छटाँक पानी में मिलाकर मुँह को भीतर से बारबार धोते रहना चाहिये।

इसके बाद शक्ति और उत्तेजना पहुँचाने के लिये २ छटाँक देशी शराब, १/२ छटाँक सोंठ, १/४ छटाँक काली मिर्च और सवासेर पानी चावल के पतले माड़ में नमक डालकर दें। इस योग के न होने पर १/४ छटाँक नौसादर और १ तोला सोंठ या अजवाइन सवासेर ठंडे पानी में मिलाकर देना चाहिये।

गले की सूजन को गरम दहकते हुए लोहे से लकीरें बनाकर दाग

देने से भी लाभ होता है। किन्तु ध्यान रहे कि यह लकीरें अधिक गहरी न हो जाँय जिससे कि पक आने की आशंका हो।

होम्योपैथिक—तीव्र ज्वर और सूजन में असह्य पीड़ा होने पर हिपर सल्फर (Hepar Sulph.) ३×, २०० से १००० का व्यवहार करें। यदि बेचैनी अधिक हो जाय और सूजन का रंग नीला दिखे तो आर्सेनिक अल्बम (Arsenic Al.) २००-१००० दें। जब सूजन में छूने से चर-चराहट की आवाज़ आवे तो रसटोक्स (Rhustox) २००-१००० का व्यवहार करें। यह दवा इस रोग के लिये रामबाण है।

सावधानी—यह भी संक्रामक रोग है। इसमें भी अन्य साव-धानियों के साथ इसका सदैव ध्यान रहे कि उसकी लाश चीरी-फाड़ी न जाय। यह रोग मनुष्यों के भी हो जाता है, इसका भी ध्यान रखें।

पथ्य—प्रारंभ में पशु भोजन के प्रति कोई रुचि नहीं दिखाते। कुछ लाभ होने पर जब उनकी इच्छा जाग्रत हो तब दूध और चावल का माँड़ दें। गेहूँ, जौ, बाजरा इत्यादि का दलिया भी दिया जा सकता है।

———

चेचक (Vareola)

इसे चेचक, माता (पंजाब), देवी (यू० पी०) और Smallpox आदि नामों से पुकारते हैं। यह रोग अन्य पशुओं की अपेक्षा भेड़ों के अधिक होता है। इस बीमारी से प्रायः पशु अच्छे हो जाते हैं किन्तु असावधानी होने पर मर भी जाते हैं।

कारण—इसके कीटाणु वायु, दुहनेवालों के हाथ या अन्य किसी रोगी पशु के स्वस्थ पशु से मिलने से फैलते हैं।

लक्षण—पशुओं को ज्वर हो जाता है। दूध कम पड़ जाता है। मटर के बराबर लाल दाने ऐन और थनों पर पाये जाते हैं जो बाद में बढ़कर फुंसियों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इनमें साफ पतला मवाद होता है। छाले सूखने पर भूरे रंग के खुरंड बन जाते हैं। प्राय: इस रोग के छाले शरीर के अन्य अंगों में उदाहरणार्थ सिर में और जंघाओं के अन्दर के भागों में और साँड़ के बाजुओं के ऊपर की खाल पर और अन्य अंगों में भी पड़ जाते हैं। बछड़ों के प्राय: होठों और थूथुन पर निकलते हैं, घोड़ों के पूँछ के पीछे और होठों, नथुनों की खाल पर और अन्य अंगों पर प्रगट होते हैं। इसी प्रकार भेड़ों पर भी इसके लक्षण प्रगट होते हैं। जब यह छाले साँस लेने की नालियों और पेट की आँतों में निकल आते हैं तब इसका उग्र रूप होता है और ऐसी दशा में रोग असाध्य हो जाता है।

चिकित्सा सूत्र—पेट यदि साफ न हो तो हल्का जुलाब दिया जाय। बरसात और कठिन धूप से बचाया जाय।

प्रतिरोधक चिकित्सा—इसमें वैक्सीन का उपयोग किया जा सकता है। यद्यपि उसे अभी अधिक प्रचलित नहीं किया जा सका है। रोगी पशुओं को झुंड से अलग रखा जाय और उन्हें एक अन्य व्यक्ति दुहे। यदि ऐसा न हो सके तो स्वस्थ गायों को पहले और रोगी गायों को बाद में दुहा जाय। प्रतिदिन दो-तीन बार ऐन से दूध बिलकुल निचोड़कर निकाल देना चाहिये। पशुओं के थन धो देना चाहिये।

होम्योपैथिक—जब यह रोग फैला हो तो प्रति सप्ताह एक बार वैक्सिनिनम (Vaccininum) २००-१००० देने से यह रोग नहीं होता है। इसी प्रकार सारासीनिया परप्यूरिया की नित्य एक खूराक देने से भी प्रतिरोध होता है।

चिकित्सा---पशु को हल्के जुलाब की दवा पिला देनी चाहिये। दो छटाँक लाहौरी नमक, डेढ़ छटाँक गंधक, सवा तोला सोंठ और डेढ़

छटाँक शोरा देना उपयुक्त है। इसके न होने पर १ सेर एप्सम-साल्ट (Epsom Salt) गर्म पानी में मिलाकर पिला दें।

माता पकने से पूर्व सेमल रुई के बीज खिला देने से बड़ा लाभ होता है। प्रथम दिन ५० बीज तीन बार में २५, १८ और ७ के क्रम से, दूसरे दिन दो बार में २५ बीज १५ और १० के क्रम से, और तीसरे दिन एक बार केवल १० बीज खिला देने से बड़ा लाभ होता है।

रोगी पशु के थन और अन्य दाने वाले भाग गुनगुने पानी में पोटैशियम परमेगनेट डालकर धो देना चाहिये। इसके पश्चात् खूब पोंछकर ५ से १० प्रतिशत बोरिकएसिड वैसलीन में मिलाकर दानेदार भागों में लगा देना चाहिये।

होम्योपैथिक—यदि एकोनाइट (Aconite N.) 30, रोग के प्रारंभ में ही जब ज्वर, नाक, आँख से जल गिरना और छटपटाना प्रारंभ हो जाय, दे दिया जाय तो रोग खराब नहीं होता। खाँसी, सर्दी, ज्वर और गरिष्ठता होने पर ब्रायोनिया (Bryonia) 30 दें। जब लाल दाने निकलने आरंभ हो जाँय और आँखें लाल और शरीर गर्म हो तो बेलाडोना (Belladona) 30 का प्रयोग करें। जब दानों में पीब पड़ जाय और उनसे दुर्गंध उठने के साथ ही बेचैनी बढ़े तो आर्सेनिक अलबम (Arsenic A.) 300. 200 दें। जब दानों में मवाद पड़ रहा हो मर्क्यूरियस (Merc. Sol) 200 खिलायें। यदि दाने ठीक से न उभरें और उनके बैठने से अन्य व्याधियाँ उठती हुई दिखें तो एन्टिमटार्ट (Antimtart) 30 का प्रयोग लाभप्रद है। अंत में जब कोई भी औषधि लाभ न करे तो सल्फर (Sulpher) 200 देनी चाहिये।

सावधानी—अन्य संक्रामक रोगों के समान ही इसमें भी सतर्कता वरतें।

पथ्य—गेहूँ, बाजरे आदि की दलिया और माड़ खाने को दें।

पीने को कुँयें का ताजा स्वच्छ जल दें। पशु के पास लाहौरी नमक का ढेला रख दें जिससे कि वह उसे चाटता रहे।

सरा (Surra)

सरा विशेषकर ऊँट, गधे, खच्चरों और घोड़ों के होनेवाला एक घातक रोग है। वैसे यह गाय, बैल, हाथियों और कुत्तों को भी हो जाया करता है। जब यह राग ऊँटों के होता है तो लोग इसे तिवर्षी भी कहते हैं। इसके होने का सामान्य समय वर्षा के आरंभ से वर्षा के अंत के कुछ समत बाद तक है। घोड़े इस रोग से बहुत शीघ्र मर जाते हैं किंतु हाथी के यह रोग बहुत दिन तक रहता है। ऊँटों के भी यह रोग काफी समय तक (तीन और तीन से अधिक साल) चलता है। अन्य पशुओं के यह रोग १ से २ मास तक रहता है।

कारण—इस रोग के कीटाणु रोगी पशु के रक्त में पाये जाते हैं। यह कीटाणु रक्त दूषित करते रहते हैं और अंत में पशु की मृत्यु हो जाती है। इस रोग के कीटाणु अधिकतर मक्खियों और डांसों के द्वारा एक पशु से दूसरे पशु के शरीर में पहुँचाये जाते हैं।

लक्षण—धीरे-धीरे बढ़कर तीव्र ज्वर हो आता है और कभी-कभी मध्यम हो जाता है। सदैव एक सा नहीं रहता। आँख की झिल्ली पीली पड़ जाती है और उसमें छोटे-छोटे खूनी रंग के दाने पड़ जाते हैं। यह दाने सरसों या मसूर के बराबर होते हैं। पशु की आँखों के आगे अँधेरा रहता है। ज्वर बढ़ने के साथ ही शरीर और रक्त में पीलिमा बढ़ती जाती है। क्रमश: बढ़ते-बढ़ते पशु की देह के नीचे के भागों अर्थात् छाती, गले, टांगें और पेट के निम्न भाग में सूजन आ जाती है। पशु का मूत्र कम हो ता और बूँद-बूँद करके होता है। पशु अपने सिर को दीवार या नाँद के

सहारे टेककर खड़ा होता है। उसे सन्निपात सा हो जाता है। और नेत्रों की टकटकी बँध जाती है। रोगी पशु जंगली जानवर के समान भागता फिरता है और चक्कर काटकर गिर पड़ता है। प्राय: पशु बीमार तो पहले से रहते हैं परंतु उनके लक्षण देर में प्रकट होते हैं। रोगी पशु में बेचैनी और उसके रोओं में भद्दापन होता है। उसकी आँखें खराब हो जाती हैं।

चिकित्सा सूत्र—इस रोग में संखिया (Arsenic) और इससे निर्मित औषधियाँ देनी चाहिये, जिससे रक्त में प्रविष्ट कीटाणु मर जाँय।

प्रतिरोधक चिकित्सा—हम बता चुके हैं कि यह रोग दंश मारने वाले मच्छरों और मक्खियों के द्वारा एक पशु से दूसरे पशु को फैलता है। इन मक्खियों का पालन-पोषण गोबर और कूड़े-करकट में होता है। अतएव गोबर, कूड़ा-करकट पशुशाला के पास न रहे। इन्हें घूरों में न डालकर सुव्यवस्थित खाद के गढ़ों में डाला जाय। इन मक्खियों की अधिकता वर्षाकाल में ही होती है। यही प्राय: सरा रोग का समय है। इस समय जहाँ पशु रहते हों, प्रात: और सायं घास-फूस सुलगाकर धुआँ कर देने से मक्खियाँ और मच्छर नहीं रहने पाते और रोग फैलने की कम ही संभावना रहती है।

चिकित्सा---इस रोग में संखिया (Arsenic) और उससे निर्मित औषधियाँ टारटर एमेनिक (Tartar Emenic) और नागनोल (Nagnol) प्रयोग करनी चाहिये। ५० सी० सी० २ प्रतिशत टारटर एमेनिक का साल्यूशन अथवा प्रति १०० पौंड शरीर के भार पर ५ सी० सी० बेयर २०५ नैगनोल (Bayer 205 Nagnol) के इण्ट्रावेनस इन्जेक्शन दिलाये। नैगनाल जर्मनी दवा है। इसके स्थान पर ऐन्ट्रीपाल (Antrypol) या मोरानाइल (Moranyl) का प्रयोग किया जा सकता है। यह दोनों क्रमश: अंग्रेजी और फ्रेंच दवायें हैं। प्रति १००० पौंड शरीर के भार पर इनके ५ ग्राम के इण्ट्रावेनस इन्जेक्शन देने चाहिये।

नेत्र-रोग

आँख उठना—जब नेत्र किसी प्रकार के रोग से ग्रसित होते हैं तो आँखों से पानी गिरने लगता है। पलक फूल जाते हैं और प्रकाश आँखों से नहीं सहा जाता।

कारण—सर्दी-गर्मी से, धूल या कंकड़ आदि के पड़ने से, धुआँ लगने, छुआछूत और इसी प्रकार के अन्य कारणों से नेत्र सूज आते हैं। कभी-कभीं तो आँख में फूली या माड़ा भी पड़ जाता है, जिससे पशु की दृष्टि जाती रहती है। भिन्न-भिन्न कारणों से उठी आँखों की चिकित्सा भी भिन्न-भिन्न होती है।

चिकित्सा सूत्र—आँख को धोकर, दवा खिलाकर व सेंक आदि के द्वारा चिकित्सा की जाय।

चिकित्सा—संक्रमण, चोट या अन्य किसी बाहरी वस्तु के आँख में पड़जाने पर आँख को, थोड़ा-सा साफ नमक, फिटकरी या सुहागा डाल कर गर्म जल से साफ करना चाहिये। इसके पश्चात् यदि कोई बाह्य वस्तु पड़ गई हो तो उसे निकालने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि न निकले तो कास्टर आयल की कुछ बूँदें आँख में टपकावें और पुन: आँख को एक प्वाइन्ट गर्म जल एवं बोरिक एसिड के घोल से धोवें। यदि आँख धूल से आ गई हो तो प्रोटारगल, आर्जीराल या एक्रोफ्लेवीन लोशन डालें।

यदि आंख की अस्तरी झिल्ली में सूजन हो तो बोरिक लोशन, जिंक लोशन, एलम लोशन, प्रोटार्गल लोशन और आर्जीराल लोशन में से किसी एक का व्यवहार करना लाभप्रद है। यदि पीड़ा अधिक हो तो पोस्ते की बुड्डी का सेंक करें।❀

❀ नमक और सहिजने की पत्ती रात में भिगोवे और प्रातः खूब पीसकर छान ले। इस जल से धोने से अधिक लाभ होता है।

चोट से आँख आने पर कबूतर की बीट को पानी में रगड़कर आँख में लगाने से भी लाभ होता है। विशेष रूप से घोड़ों के चोट से, और झटका लगने पर त्रिफला (आँवला, हरड़, बहेड़ा) को कूटकर पानी में भिगोयें और दूसरे दिन प्रात: छानकर फिटकरी मिलाकर धोवें। यदि पशु नेत्र खोलता ही न हो तो सरसों का तेल कपड़े में भिगोकर आँख पर बाँध देने से वह तुरन्त आँख खोल देगा।

फूली या माड़े की चिकित्सा—मनुष्यों के समान ही पशुओं की आँख के ढेले पर फूली पड़ जाया करती है। इसमें कास्टिक लोशन का व्यवहार करना चाहिये। सहिंजने के बीज को खूब रगड़कर जल के मिश्रण से नियमित रूप से कुछ समय तक आँख धोते रहने से फूली जाती रहती है। यदि फूली में नेत्रों से जलप्रवाह होता रहे तो तम्बाकू का पानी या सुरती खानेवाले मनुष्य की पीक आँख में डालने से लाभ होता है। फूली में कच्चा साँठी का चावल मदार के दूध में मिलाकर मिट्टी के पात्र में भरकर क्षार कर ले*। क्षार को ठंढा करके प्रतिदिन दो बार लगाने से बहुत लाभ होता है। यह औषधि प्रत्येक पशु के फूली होने पर सर्व प्रथम काम में लावे।

घोड़ों व ऊँटों आदि के फूली—यदि उपरोक्त अंतिम औषधि लाभ न करे तो फूली हुई फिटकरी और सिन्दूर सम भाग लेकर महीन पीस लें और आँख में प्रतिदिन दो से छै रत्ती की मात्रा में लगावें। अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि मनुष्य के मूत्र का

---

* क्षार करने की नियमित विधि यह है कि वस्तु को मिट्टी के पात्र में भरने के बाद उसका मुँह मिट्टी से बंद कर दिया जाता है और कण्डों की आग पर रख दिया जाता है। जब भीतर की वस्तु जलकर क्षार हो जाय तब उस वस्तु को प्रयोग करें।

छींटा देना भी लाभप्रद है। इसी प्रकार साँभर नमक और बँगला पान पीसकर पानी में घोल ले और उससे पिचकारी के द्वारा आँखें धो देना भी गुणकारी है। पीली फिटकरी काँच की चूड़ी और घोंघे का चूना समान भाग में मिलाकर बुकनी बनाकर किसी नली द्वारा आँख में फूक देने से भी फूली समाप्त हो जाती है। महीन पिसा सेंधा नमक शहद में मिलाकर उसका अंजन लगाना चाहिये। इसे प्रत्येक दवा के साथ चालू रखा जा सकता है।

हाथी के नेत्र-रोग

माड़ा—हाथी के माड़ा होने पर तिल के तेल में नौसादर घिसकर लगाने से रोग जाता रहता है। माड़ा होने पर सेंधा नमक, भुनी फिटकरी, चूल्हे की लाल मिट्टी, बबूल की पत्ती, नीम की छाल और अजवाइन पानी के साथ पीसकर आँख में लगाना गुणकारी है। इसी प्रकार सिरस के बीज, सफेद चिरमिटी, माजूफल, निर्मली, रत्न-ज्योति, लावा फिटकरी, छोटी और बड़ी हरड़, आमा-हल्दी, गुग्गुल, जायफल, अफीम और गजनख समभाग में लेकर पीसे और महीन कपड़छान कर शहद में मिलाकर आँख में लगावे, तो लाभ होता है। हाथी के फूली होने पर भी यह औषधि लाभकारी है।

ढरका—हाथी के प्राय: आँखों से पानी गिरा करता है। इसे ढरका कहते हैं। इसमें रसौत, लौंग, फिटकरी और अफीम समान मात्रा में लेकर इमली के पानी में भिगो दें। जब वे पर्याप्त भीग जाँय तो उन्हें किसी चिकने पत्थर पर रगड़कर उसका अंजन आँख में लगावें।

पुतली—यह रोग हो जाने पर नेत्रों पर जल भरा सा रहता है। हाथी कुछ देख नहीं पाता। महीन पिसे हुए ३ पैसे भर सिरस के बीज एक काँसे के पात्र में तीन पाव मदार के दूध में सिरस की ही लकड़ी से

तीन-चार दिन तक घोटें। इस प्रकार इसकी कज्जली तैयार हो जायगी। इसे नेत्रों में लगाकर पानी का छींटा दें और घी मलें।

नाखूना—आँख की पुतली के चारो ओर लालिमा सी छा जाती है और मोटे डोरे के समान उभरी हुई कुछ वस्तु स्पष्ट दिखाई देती है।

चिकित्सा—माजूफल, छोटी हरड़, नीला थोथा, और लौह-चूर्ण बराबर-बराबर लेकर महीन पीसकर आँख में लगावें।

नोट—उपरोक्त औषधियों के अतिरिक्त पशुओं के नेत्रों की विधिपूर्वक धुलाई अवश्य करते रहना चाहिये।

होम्यो०—प्रातःकाल एकोनाइट १ × और सायंकाल बेलोडोना १ × को आठ बूँदें देनी चाहिये। यह औषधि आँख फूलने पर बहुत लाभकारी है। लक्षण भेद से मर्क्यूरिसोस आर्सेनिक, इडफ्रेसिया, रेस-टाक्स, पल्सेटिला, हिपर सल्फर आदि दवायें भी दी जा सकती हैं।

पथ्य—तरल और बादी करनेवाले खाद्य न दें। पीने के पानी में खानेवाला सोडा मिलाकर देना लाभप्रद है।

सावधानी—पशु को उजाले में न रखें। आँखें बराबर साफ रहें, पूर्ण विश्राम दें और नेत्रों को प्रकाश से बचावें। आँखों पर हल्दी में रँगा हुआ कपड़ा डाल देना अच्छा रहता है।

मादा पशु के रोग

बाँझपन

कुछ मादा पशु ऐसे भी होते हैं जो गर्भ धारण ही नहीं करते। आर्थिक दृष्टि से ऐसे पशु अत्यंत अलाभप्रद होते हैं। इन्हें बाँझपन का रोग होता है।

कारण—पैदा होते ही पूरी मात्रा में दूध न मिलने, अच्छे व पौष्टिक आहार की कमी, उचित समय पर साँड़ का अभाव और जुड़वा बच्चों में एक नर और एक मादा होने पर मादा पशु को प्राय: बाँझपन का रोग हो जाता है।

लक्षण---मादा पशु गर्भ नहीं धारण करता।

चिकित्सा सूत्र---इसके संबंध में निरंतर परीक्षण हो रहे हैं किंतु कोई निश्चित खोज नहीं हुई है। यहाँ पर कुछ परीक्षित योग दिये जाते हैं जिनसे लाभ होता देखा गया है।

चिकित्सा---(१) आधी छटाँक फारफेट सोडा गर्म जल में डाल कर योनि को निरंतर धोते हैं। (२) किसी योग्य चिकित्सक से गर्भा-शय का मुँह खुलवा देते हैं। (३) दो सेर सन के हरे पत्ते नित्य दें। (४) १५ दिन तक लगातार आधा सेर गुड़ में एक सेर सन के बीज मिलाकर खिलावें। (५) एक सप्ताह तक बासी जौ की रोटी में सात छुहारों की गुठली रखकर खिलावें। (६) दो सेर अंकुर निकले गेहूँ या जौ १५ दिन तक खिलावें। (७) ढाई पाव मेथी महीन पीसकर पानी में लुगदी बनाकर ३-४ दिन तक प्रात: काल दें।

होम्यो०—यदि पशु का यह वंशगत दोष हो, देर से गर्भ धारण न किया हो, पशु अधिक मोटा न हो तथा मूत्र का रंग पीला हो तो मर्क्यूरियस (Merc. sol) २००, १००० का व्यवहार करें। यदि पशु भागने का प्रयास करे, भौचक्का सा रहे और डरा हुआ सा हो तो बोरैक्स—(Borax) २००, १००० का व्यवहार करें। यदि पशु की मोटाई अधिक हो और गर्म न होता हो तो कैल्केरिया कार्ब (Calc. Carb)२००, १००० दें। जरायु संबंधी दोष होने पर पल्सेटिल्ला (Pulsatilla) दें।

पथ्य—मांस और वसा बढ़ानेवाला चारा अधिक न दें। चारा गरम तासीर का हो।

सावधानी—पशु को अधिक दिनों तक न दुहना चाहिये। गर्म होते ही उसे सांड़ से मिला देना चाहिये।

गर्भपात

उचित समय से पूर्व बच्चा निकल आने को गर्भपात कहते हैं। इससे केवल बच्चे की हो हानि नहीं वरन् पशु के दूध में भी विशेष कमी आ जाती है! प्रायः पशु बाँझ भी हो जाते हैं और कभी-कभी तो लगातार २-३ बार गर्भपात हो जाता है।

कारण—यह किसी विशेष संक्रमण से, किसी चोट से, दस्तावर दवा देने से या बुखार से हो जाया करता है। अपच, रेलयात्रा और एक विशेष प्रकार के कीटाणु (बैक्टीरिया) से भी यह रोग हो जाता है। जब यह रोग बैक्टीरिया से उत्पन्न होता है तो संक्रामक हो जाता है।

लक्षण—पशु खाना-पीना कम कर देता है और कमज़ोर दिखता है। उसका पेट फूल जाता है और प्रायः रक्तस्राव भी प्रारंभ हो जाता है। अधिकतर बच्चे पेट में ही मर जाते हैं। यदि बच्चा ८-६ माह का है तो बचना कठिन हो जाता है।

प्रतिरोधक चिकित्सा—गाभिन होते ही पाव भर घी में आधा तोला पिसी हुई काली मिर्च मिलाकर दें। इसके बाद लसोढ़े के हरे पत्ते खिला दें। जिस दिन गाभिन हो उस दिन आहार न दिया जाय। यदि दिया जाय तो वह हल्का और ठंढा हो। गाभिन होने के २-१ दिन पूर्व अंकुर निकले हुए ४ सेर गेहूँ या जौ खिला दें तो अच्छा है। इतनी मात्रा तीन-चार बार में खिलाना चाहिये। इसके अतिरिक्त पाव भर सफेद तिल

रात में भिगो दें। प्रात: घोट-पीसकर गाभिन होने के दिन से दो दिन बाद तक पिलावें। सर्दी के दिनों में यह औषधि न दें।

जब इसकी आशंका हो तो पशु को पूर्ण आराम दें। और एकांत स्थान में रखें। पेट के सामने और नीचे बहुत हलकी मालिश करें। उसे हलका और सुपाच्य दलिया दिया जाय। संभव हो तो तीन दुवन्नी भर अफीम दें।

होम्यो०---गर्भपात की संभावना होने पर वाईबर्नम प्रून (Vibernum prun) ३० दें। यदि चोट-चपेट से गर्भपात होने के लक्षण दिखें तो आर्निका (Arnica M,) २०० दें। यदि इसके पूर्व भी गर्भपात हो चुका हो तो एसिड नाइट्रिक (Acid Nitric) ३००-२०० लाभप्रद सिद्ध होगी। यदि दूसरे तीसरे माह में गर्भपात हुआ करे तो सेबाइना (Sabina) ३००-२०० और पाँचवें छठे माह होने पर सिपिया (Sepia) २००-१००दें।

चिकित्सा---यदि गर्भपात हो ही जाय तो मादा पशु के पिछले पुट्ठे और प्रजनन अंग आदि को परमैंगनेट पोटाश के पानी से धोकर खूब साफ कर दिया जाय। इसके पश्चात् पशु को कोई उत्तेजक पेय पदार्थ दें। आधा सेर जल में दो छटाँक देशी शराब देना अच्छा रहता है। इसके साथ २॥ तोला सोंठ और सवा तोला पिसी हुई कालीमिर्च देना अधिक गुणकारी है। उपरोक्त सोंठ आदि औषधियाँ देने के पूर्व ही निकले हुए भ्रूण को या तो दूर ले जाकर जला दिया जाय या भूमि में गाड़ दिया जाय। यदि गर्भपात का कारण संक्रमण है * तो निकटस्थ पशु-

---

* रोग संक्रामक है या नहीं यह जानने के लिये निकटस्थ वेटरिनरी सर्जन की सहायता लें। उसके द्वारा भ्रूण के हृदय का रक्त और उसके पेट में होनेवाली वस्तु अथवा मादा पशु का रक्त सीरम (Blood Serum) निकट की वेटरिनरी लेबोरेटरी में जाँच के लिये भिजवा दें। यदि वहाँ से यह पता चले कि रोग संक्रामक है तो उपरोक्त टीके लगवाना न भूलें। ऐसे पशुओं का दूध पीने से मनुष्यों को भी ज्वर हो आता है। जब बैल आदि पशु संक्रामक रोग से प्रभावित होते हैं तो उनके पैरों के जोड़ों में सूजन परि-

चिकित्सक से मिलकर बैक्टीरिया-टीका (Bacterial Culture of low virulence) का टीका लगवा दें और इससे प्रभावित बछड़ों के रक्त का विशेष टीका (Special Calf-blood Vaccine) लगवा दें।

होम्यो०---यदि यह ज्ञात हो कि बच्चा पेट में मर गया है तो पल्साटिल्ला १× का ८ बूँदें जल के साथ प्रति घंटे दें। यदि बच्चा जीवित हो तो ठंढे पानी की धार छोड़ें और सिकेल १× की प्रति पंद्रह मिनट बाद आठ-आठ बूँदें दें। गर्भपात होने के बाद भी इसकी आठ-आठ बूँदें देते रहें। यदि लाल रंग का रक्तस्राव हो तो सेवाइना १× की आठ बूँद प्रति १५ मिनट बाद दें। यदि गर्भपात चोट-चपेट के कारण हुआ हो तो आर्निका मांट १× (Arnica mont x) की आठ बूँदें इसी क्रम से दें।

पथ्य——हल्का सुपाच्य आहार दें।

सावधानी—जब तक यह निर्णय न हो जाय कि रोग संक्रामक है या नहीं, तब तक पशु को अलग ही रखें।

जेर रुकना

कभी-कभी ब्याने के बाद पशु की जेर निकलने में अधिक समय लगता है और इससे पशु को कष्ट तो मिलता ही है साथ ही अनेक प्रकार की व्याधियाँ उठ खड़ी होने की आशंका रहती है। उससे प्रायः गर्भाशय में सूजन आ जाती है और उपचार के अभाव में पशु बाँझ तक हो जाता है।

कारण---इसका मुख्य कारण दुर्बलता है।

लक्षित होती है। इसी प्रकार बछड़े भी इससे प्रभावित होते हैं। जब तक यह निश्चय न हो जाय कि यह रोग संक्रामक है अथवा नहीं, तब तक पशु को बिलकुल अलग रखा जाय।

चिकित्सा सूत्र—जेर का बाहर निकालने का प्रयत्न करें। एन्टीसेप्टिक घोल से धुलाई करें और बुखार उतारने वाली दवायें दें।

चिकित्सा—रुकी हुई जेर को धीरे-धीरे हाथ से निकालें। खींचने में शक्ति का उपयोग न करना चाहिए क्योंकि यदि कुछ भाग टूटकर भीतर रह जाय तो गर्भशय में अधिक सूजन आने की आशंका रहती है यदि अधिक समय लगे और जेर न निकले तो निकटस्थ पशु-चिकित्सक को दिखावें। पशु का गर्भाशय साफ करने के बाद निम्न वस्तुओं का मिश्रण पिलावें —

तरल अरगट	२ ड्राम
टिंचर अरगट	१ औंस
नमक	६ औंस
सोंठ	½ औंस
शीरा या गुड़	८ औंस
गुनगुना जल	२ बोतल

होम्यो०—जेर तथा गंदा रक्त निकालने के लिए पल्साटिल्ला (Pulsatilla) १× की दस बूँदें देने से तुरन्त लाभ होता है। यदि यह प्रभाव न करे तो सिकेली कर्न्यूट (Secale Cor.) २०० दें। जेर गिरने के पश्चात् आर्निका (Arnica) २०० देना लाभप्रद है। इससे सारा कष्ट दूर हो जाता है।

योनि व गर्भाशय का उलट जाना

कभी-कभी ब्याते समय योनि व गर्भाशय पूर्णतया आंशिक रूप से अन्दर से बाहर निकल आते हैं और बाहर लटकने लगते हैं। यह अधिकतर बड़े और वृद्ध मादा पशुओं के होता है।

कारण—बूढ़े पशु जब बच्चा बाहर निकालने के लिए अधिक जोर

लगाते हैं अथवा कभी-कभी जेर के अनुचित एवं अस्वच्छ ढंग से बाहर निकालने पर भी ऐसा हो जाया करता है।

लक्षण---ब्याने के बाद जेर के साथ या उसके गिरने के बाद एक मांसपिंड सा बाहर निकल आता है।

चिकित्सा सूत्र---किसी विषनाशक घोल से निकले हुए भाग की धुलाई कर दें और निकले हुए भाग को धीरे से भीतर दबा दें। पीड़ा दूर करने के लिये औषधियाँ दी जाएँ।

चिकित्सा---पोटास के घोल से निकले हुए भाग को धोकर, साफ चिकने हाथों से धीरे-धीरे गर्भाशय को भीतर दबा दें। तदुपरांत एक बोतल की गर्दन में दो तरफ एक रस्सी लगाकर बोतल के पेंदे से योनि व गर्भाशय को धीरे से दबाया जाय। रस्सी के दोनो किनारों को पूँछ के चारो ओर और ऐनों के नीचे सामने एक रस्सी जो उसके शरीर के चारो ओर बँधी हुई हो, से ले जाकर ऐनों के सामने बाँधा जाय। पिछले पुट्ठे उठा दिये जाँय और पशु को इस प्रकार खड़ा किया जाय कि उसका पिछला भाग ऊँचा रहे। इसके बाद अफीम १ से २ ड्राम तक की मात्रा में दी जाय। अब जहाँ तक हो पशु-चिकित्सक को दिखा दें। यदि पशु खड़ा हुआ हो तो उसके पिछले पुट्ठों के निम्नभागमें कुछ लगाकर वे उठा दिये जाँय। बाद में २ छटाँक फिटकरी मिला हुआ गर्म पानी उसे पिला दें। उसे सात-आठ घंटे तक बैठने दें। इसके अतिरिक्त १ पाव रूखा कतीरा गोंद प्रातः एवं सायं खिलाकर आधी छटाँक रसौत दो सेर पानी में घोलकर देने से लाभ होता है। १ तोला सोंठ पाव भर घी में मिलाकर ३-४ दिन तक देने पशु को आराम मिलता है।

होम्यो०---पोडोफाइलम (Podophylum) या सिपिया (Sepia) २०० देने से बच्चेदानी भीतर चली जाती है। औषधि देने के साथ ही बाहर से भी प्रयत्न आवश्यक है।

आहार---सुपाच्य एवं हल्का आहार देना चाहिये।

सावधानी---पशु को स्वच्छ एवं शांत स्थान में रखें। ८-१० दिन तक अधिक चलने-फिरने न दिया जाय। पशु को अधिक उछलने-कूदने न दें।

थनों की सूजन

प्राय: पशुओं के थनों में पीड़ा होती है और उनमें सूजन आ जाती है। वे दूध देना बन्द कर देते हैं और धीरे-धीरे उनका दूध घट भी जाता है।

कारण---दोहक के बड़े नाखून लगने, दुहने के बाद थनों को भीगा छोड़ देने, नीचे की भूमि गंदी होने या बछड़े द्वारा थन काट-लेने से उनमें सूजन आ जाती है। उनमें भयंकर पीड़ा होती है और पशु बेचैन रहता है।

लक्षण---थन सूजकर कड़े पड़ जाते हैं। दुहने में पशु को कष्ट होता है। कभी-कभी ऊपर घाव भी हो जाते हैं। प्राय: दूध के बदले सफेद पतला या लाल रस भी निकलता है। पशु को ज्वर हो जाता है।

चिकित्सा सूत्र---जखमों को दुखने से बचावें।

चिकित्सा---नमक के पानी (१० छटाँक जल, एक चम्मच नमक) से थनों को धोकर उन्हें स्वच्छ कपड़े से पोछें। फिर धीरे से बोरिक का 'मरहम लगा दें। यदि दूध न निकला हो तो 'टीट साइफन' से दूध निकाला जाय। यह एक प्रकार का यंत्र ही है जिससे पशुओं को दुहा जाता है। इसे काम में लाने से पहले गरम जल में धो लें और इसमें वैसलीन लगा लें। थनों के ऊपर के घाव अच्छे करने के लिए जिंक मरहम या वैसलीन का व्यवहार करें।

होम्यो०---सूजन के साथ पीड़ा और ज्वर होने तथा लाली कम होने पर पलसेटिल्ला, लाली व कड़ापन होने पर हिपर सल्फर (Hepei-Sulpher) २००,१०० दें। ज्वर कम हो और थनों से पोप सा द्रव निकले तो साइलीसिया (Silicea) २०० और यदि पीड़ा का कारण चोट है तो आर्निका (Arnica) २०,२००० दें। यदि अधिक दूध उतरने के कारण पीड़ा है तो ब्रायोनिया (Bryonia) दें।

विषग्रस्त पशु की चिकित्सा

प्राय: पशु स्वयं या किसी दूसरे के देने से विष खा लेते हैं। इसी प्रकार चारे आदि के अभाव में ;विषैली घास या फूल निकलने से पूर्व छोटी ज्वार की करबी खा लेने से भी पशु विषग्रस्त हो जाते हैं।

लक्षण—पशु एकाएक बीमार पड़ जाता है। पेट में कठिन पीड़ा और शरीर में कँपकपी होने लगती है। मुँह में झाग भर जाता है। शरीर में ऐंठन होती है। प्यास बढ़ जाती है। पेट फूलने लगता है और जल्दी-जल्दी दस्त आने लगते हैं। वह अपनी सींगों को या अपनी टाँगों को पेट में मारता है।

चिकित्सा-सूत्र---पशु को पेट साफ करने की दवायें और बाद में उत्तेजक औषधियाँ दें जो विष के प्रभाव को कम करें।

चिकित्सा---संखिया जैसे विष के खाने पर पशु को पतले दस्तावर पेय दें। अंडे की सफेदी और चूने का पानी सर्वश्रेष्ठ है। यदि विष साधारण हो तो ½ छटाँक मुसब्बर, ½ छटाँक सोंठ, १ पाव शीरा तथा ६ छटाँक जुलाबदाना या लाहौरी नमक सवा सेर गरम जल में मिलाकर गुनगुना घोल पिलावें। इसके स्थान पर ५ छटाँक अलसी का तेल, ५ छटाँक मीठा तेल और ३० बूँद जमालगोटे के तेल का मिश्रण भी दिया जा सकता है।

पेट की पीड़ा कम करने के लिये १ से लेकर २ ड्राम तक अफीम दें।

चेत होने की दशा में शराब, अल्कोहल या अमोनिया की सुँघनी का प्रयोग करें। अलसी का माड़ पशु को अधिक मात्रा में दें।

संखिया का विष मारने के लिये आयोडीन क्लोराइड और सोडाबाईकार्ब का मिश्रण तैयार कर कपड़े से छानकर गरम जल में मिलाकर पशु को पिलावें।

यदि ज्वार का विष है तो सोडा हाइपो सल्फेट अथवा लाइकरपोटाश और आइरन सल्फेट से बनाये गये ताजे फैरस हाइड्रेट का सेवन करावे।

पथ्य---खाने को नरम चारा जैसे अल्सी का दलिया, हरी घास और चोकर का हलुवा दें।

सावधानी---उसे शांति तथा विश्राम दें।

नोट---जब पशु के विषग्रस्त होने का संदेह हो तुरंत समीप के पशु-चिकित्सक से मिलकर दूषित अंग का विष रासायनिक परीक्षक के पास भेजें। यदि किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा विष दिये जाने का संदेह हो तो पुलिस को सूचना दें।

सर्पदंश

पशुओं को प्राय: साँप काटलेते हैं। यह विषैले और निर्विष दोनो ही तरह के होते हैं। इन्हें सरलता से पहिचाना जा सकता है। अधिक विषैले सर्प के काटने से एन्थ्रैक्स आदि बीमारियों की भी आशंका रहती है।

लक्षण---निर्विष सर्प अपने दाँतों से इस प्रकार काटता है कि काटने से दो गहरी पंक्तियों में अनेक छेद हो जाते हैं। विषैले सर्प अपने दाँतों से दो इकहरी पंक्तियों में सूक्ष्म छेद करता है और इन पंक्तियों के बाहर की ओर एक बड़ा छिद्र करता है। कृष्ण सर्प के दंश से स्नायु में और विशेष रूप से साँस लेने वाले भागों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यदि पशु को किसी अधिक विषैले सर्प ने काटा है तो ५ या १० मिनट में उसके लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं।

चिकित्सा सूत्र---काटे हुए स्थान का विषैला रक्त ऊपर का न जाने देने के निमित्त रस्सी से बाँध दें और काटकर विषैला रक्त निकाल दें। इसके बाद विषनाशक औषधि से धोवें और पशु को गरम पदार्थ दिया जाय।

चिकित्सा---कटे हुए भाग से कुछ ऊपर एक पट्टी खूब कसकर बाँध दी जाय और १-१॥ घंटे तक कसा रखा जाय। आध इंच गहरे दो या दो से अधिक छिद्र, काटे हुए भाग से ऊपर काटकर, उसे जोर से खूब दबाया जाय और विषाक्त रक्त निकालकर बाहर कर दिया जाय। विषैला रक्त निकल जाने के बाद छिद्रों को लाल दवा (पोटैशियम परमैंगनेट) अथवा (ब्लोचिंग पाउडर) से धो दिया जाय। धोने के बाद लाल दवा या विरंजक चूर्ण के घोल में भिगोकर रुई के फाहे से घाव बंद कर दिये जाँय और २ ग्रेन पोटेशियम परमैंगनेट १ पाइंट पानी में मिलाकर दिन में तीन बार दें। पशु को अल्कोहल जैसे उत्तेजक तथा गरम पदार्थ दिये जाँय और गरम रखा जाय। इसके पश्चात् पशु-चिकित्सक से सर्प-विषनाशक ३ इंजेक्शन लगवाये जाँय।

बर्र आदि का दंश---प्रायः पशु को बर्र, मधुमक्खी आदि जहरीले कीड़े काट लेते हैं। इनके दंश से काटा हुआ भाग सूज आता है और पीड़ा भी बहुत होती है। इसका प्रभाव एक-दो दिन तक रहता है।

लक्षण---काटे हुए स्थान में सूजन आ जाती है और पीड़ा के कारण पशु बहुत बेचैन होता है। वह थक जाता है। यदि पशु के सिर, मुँह, गला या नाक में काटा हो तो उसे साँस लेने बड़ा कष्ट होता है।

चिकित्सा सूत्र---विषनाशक घोल से काटा हुआ स्थान खूब धो दें और उत्तेजक औषधि दें।

चिकित्सा---सर्व प्रथम काटे हुए स्थान को अमोनिया के हलके घोल से धो दें। अमोनिया के अभाव में सोडा का भी उपयोग किया जा

सकता है। स्पिरिट भी लाभदायक सिद्ध होती है। अधिक बेचैनी होने पर रम व देशी शराब का सेवन करावें।

लू व धूप का लगना

लू व धूप अधिक ताप और तेज धूप के कारण लग जाती है। थके-माँदे पशु विशेष रूप से इसके शिकार होते हैं। इसका आक्रमण प्रायः घातक होता है। साधारणतया पशु १ से ३ दिन तक जीवित रहता है। यदि पशु बच भी गया तो बहुत समय बाद तक ढीला और सुस्त रहता है।

लक्षण—पशु का धूप में छटपटाना और छाया में स्थिर रहना। साँस तेज होना, आहार का त्याग, रोयें खड़े होना और तेज बुखार होना इसके लक्षण हैं। पशु भूमि पर गिर जाता है और उसकी मांस-पेशियों में तनाव आ जाता है।

चिकित्सा सूत्र—पशु को शीतलता पहुँचायें और दस्तावर औषधि दें तथा बाद में शक्तिवर्धक औषधि खिलायें।

चिकित्सा---पशु को किसी छायादर शीतल स्थान में रखें और उसका सिर व गर्दन ठंडे पानी से धोवें। यदि बर्फ मिल सके तो उसे पशु के सिर पर रख दें। इसके बाद सैलाइन जैसी दस्तावर औषधि दी जाँय। इसके साथ ही निम्न चीजें देने से लाभ होता है—

(१) सफेद तिल मिट्टी के पात्र में भिगो, उसे घोट-पीसकर खिलावें।

(२) तीसी का महीन चूर्ण बनाकर मीठे तेल में मिलाकर दें।

(३) कच्चे आम का पना बनाकर पिलावें।

होम्योपैथिक—बुखार होने पर सर्वप्रथम एकोनाइट (Aconite)3x का व्यवहार करें। ग्लोनाइन (Glonine) 200 भी अच्छा असर करती है। इसमें नाड़ीगति कुछ तीव्र रहती है।

यदि पूरे-पूरे लक्षण प्रगट हो गये हों तो नक्सवोमिका (Nux Vom.) 200, 100 रामबाण सिद्ध होती है ।

आहार—गरिष्ठ आहार न देकर हल्का पतला आहार दें ।

सावधानी—अच्छा हो जाने के बाद भी धूप आदि से बचावें ।

शरीर के भीतरी कृमरोग

गोल कीड़े---यह कीड़े छोटे और बड़े दो प्रकार के होते हैं और आँतों में रहते हैं ।

कारण---चरते समय या अन्य प्रकार से ये कीड़े पेट में चले जाते हैं । इसके अंडे गोबर के साथ बाहर निकलते और सर्दी-गर्मी पाकर फूट निकलते हैं । यह एक या दोनो प्रकार के एक ही पशु में हो सकते हैं ।

लक्षण—पशु पोंकता है (पतला दस्त होता है) और फिर बद-हज्मी के लक्षण प्रकट होते हैं । चारा पचता नहीं है और पेट में गड़बड़ी रहती है । छोटे बछड़ों के यह रोग हो जाने पर उनकी बाढ़ रुक जाती है। बड़े पशुओं के होने पर वे दुबले होने लगते हैं और प्राय: उनकी मृत्यु हो जाती है । परंतु छोटे बछड़े इस रोग से अधिक ग्रसित होते हैं ।

चिकित्सा सूत्र—ऐसी औषधियाँ दें जो पेट को साफ कर दें और कीड़ों को मार दें ।

प्रतिरोधक चिकित्सा---इससे ग्रसित पशुओं के संसर्ग से अन्य पशुओं को बचावें ।

चिकित्सा—अलसी का तेल १ पाइन्ट और तारपीन का तेल १ औंस लेकर एक में मिलाकर दें। इसी प्रकार १ प्रतिशत कापर सल्फ का १३ औंस लोशन भी दे दिया जाय तो लाभ करता है। इस रोग में फिनाविस या फिनाथायज़ीन भी लाभप्रद हैं। सामान्यतया गाय, भैंस, बैल, बकरी आदि के कृमि-रोगों में १ प्रतिशत फिनाविस, थिनथायजीन या हैक्सा क्लोरोथीन १ औंस तूतिये के साथ ४५ ग्रेन तम्बाकू की बुकनी मिलाकर देने से बहुत लाभ होता है। यह दवा तीन-तीन सप्ताह बाद अवश्य देते रहें। नमक का पानी पिचकारी द्वारा गुदा में देने से, मठे के साथ पलाश के बीज पीसकर पिलाने से, तरोई के दस बीज मट्ठे के साथ पिलाने से, वायविडंग, पलाश के बीज, तुलसी के पत्तों की भस्म इन्दुररूमी (मुसाकानी) लता के रस में मिलाकर देने से पेट में होनेवाले प्रत्येक प्रकार के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। अतएवं इन्हें आगे लिखे गये सभी कृमिरोगों में दिया जा सकता है।

होम्यो०—सिना (Cina) २००,१००० देने से लाभ होता है। इसके साथ ही सैन्टोनाइन (Santonine) १×१३×२०० दें। यदि बड़ा बछड़ा बार-बार पूँछ हिलाये तथा बेचैनी प्रकट करे तो ट्यूक्रियम (Teucrum) २०० का व्यवहार करें। पेट में लम्बे कीड़े हों तो फलिक्स मास (Filixmas) दें।

चारा दाना—पशु को दवा देने के ३-४ घंटे बाद तक तो कुछ भी नहीं देना चाहिये। पानी जहां तक हो कम दें। छाँछ या मट्ठा देना लाभप्रद है। चारा-दाना ऐसा हो जिससे पेट साफ हो सके और हल्का हो।

सावधानी—यदि पशु को मिट्टी खाने की आदत पड़ गई हो तो उसके मुसका लगा देना चाहिये। चारादाना साफ होना चाहिये।

लम्बे कीड़े

पेट में एक से चार-पाँच इंच तक लम्बे और तागे के समान

पतले कीड़े हो जाते हैं। यह कृमि भी गोल कीड़ों के समान ही फैलते हैं।

लक्षण—गोबर में इनके बच्चे निकलते हैं। इन कीड़ों के अंडे खाँसी के साथ बाहर आते हैं और पशु उन्हें निगल जाता है। कभी-कभी कफ में रक्त भी होता है। शेष लक्षण गोल कीड़ों के रोग के समान हैं। संदेह होने पर पशु का गोबर और कफ पशु-चिकित्सक को देकर उसका परीक्षण करा लेना चाहिये। यह कीड़ा श्वास की नली और फेफड़ों में रहता है। इसके अंडे आँतों में पलते हैं जिससे आँतें सूज आती हैं।

चिकित्सा सूत्र—पशु को ऐसी औषधियाँ जो फेफड़ों के कृमियों को मार सकें, दें। इसके साथ ही पेट साफ रखें।

प्रतिरोधक चिकित्सा—गोल कीड़ों के रोग के समान।

चिकित्सा---पशु को १ से ३ ड्राम तारपीन का तेल, ५ से १५ बूँदें कारबोलिक एसिड, ५ से १५ बूँदें लाइसोल दूध में मिलाकर दें। प्राय: कुछ कीड़े ऐसी जगहों पर होते हैं जहाँ दवा सीधे नहीं पहुँच पाती। ऐसी अवस्था में किसी पशुचिकित्सक को दिखावें। वह आधा से १ ड्राम तक क्लोरोफार्म पशु के नथुनों में सुँघायेगा। इस रोग में कुछ चिकित्सक आयोडीन मिक्सचर की ३ या ४ ड्राम की सुई देते हैं। यह आयोडीन मिक्सचर १०० भाग डिस्टिल्डवाटर, १ भाग आयोडीन, १० भाग पुटाशियम आयोडाइड मिलाकर तैयार होता है। गोल कीड़ों की चिकित्सा में, जो सामान्य सभी कृमिरोगों के लिए औषधियाँ हैं, वे भी दें।

होम्यो०---फिलिक्स मास (Filix Mas) इस रोग में विशेष रूप से लाभप्रद है। शेष गोल कीड़ों के समान ही करें।

चारा-दाना---पूर्ववत्—पृष्ठ १२६ पर देखें।

फीते की तरह के कीड़े

यह कृमि फीते के समान चपटे होते हैं और इनका गला

पतला होता है। यह कृमि स्वयं में ही नर व माद दोनो होते हैं। यह अधिकतर कुत्तों और भेड़ों के अधिक होते हैं। यह कीड़े ३ से २० फीट तक लम्बे होते हैं और चौड़ाई आधा इच के लगभग होती है। दूसरे कम चौड़े ($\frac{1}{8}$ या $\frac{1}{12}$ इंच) और १५ फीट तक लंबे होते हैं।

कारण, चिकित्सा सूत्र, प्रतिरोधक चिकित्सा—अन्य कृमि रोगों के समान ही है।

लक्षण—पौष्टिक आहार देते रहने पर भी पशु निर्बल होता जाता है। बाज-बाज पशु के यह कोड़े पेट में छिद्र कर देते हैं। प्रारंभिक अवस्था में कोई प्रकट लक्षण नहीं ज्ञात हो पाते। बाद में पशु गिरा हुआ व दुबला दिखता है। चारा-दाना पचता नहीं है। गोबर में कीड़ों के अंडे मिलते हैं। पेट में कभी-कभी दर्द भी होता है। बाढ़ रुक जाती है। प्रारम्भ में बाल-कृमियों का पता तो उनके काटते रहने पर ही चलता है। इसके लिये अच्छा यह है कि जरा भी कुछ शक हो तो पशु व उसका गोबर किसी अनुभवी पशु-चिकित्सक को दिखा लें। वह सूक्ष्म-दर्शक यंत्र से देखकर बता सकता है।

चिकित्सा—रोगी पशुओं को ४ ड्राम सुपाड़ी का चूर्ण, १ ड्राम टारटर एमेटिक प्रति दिन एक बार देवे। इसके पश्चात् १ 'पाइन्ट अलसी के तेल में १ औंस तारपीन का तेल दें। इस संबंध में यह ध्यान रहे कि कुत्तों को सुपारी का चूर्ण प्रति पौंड वजन पर २ ग्रेन के अनुपात से दें किन्तु कुत्ते के बच्चों को यह न देना चाहिये। इस चूर्ण को दूध या मक्खन के साथ देना लाभप्रद है। घोड़े तथा अन्य पशुओं को ४० से ६० ड्राम फिनथायजीन या फिनाविस देना लाभप्रद है। गोल कीड़ों के रोग में दिया गया फिनाविस तूतिये का घोल तंबाकू की बुकनी का नुस्खा तैयार करके दें लाभप्रद है। सेन्टोनीन २ ग्रेन, सोडाबाइकार्ब १० ग्रेन मिलाकर दें। फिर बाद में कास्टर आयल दें। इस प्रकार अन्य सामान्य औषधियाँ जो उसमें दी हैं, देने से लाभ होता है।

होम्यो०—पेट के कीड़ों में दी गई पिछली औषधियाँ इसमें भी दें।

सावधानी व चारादाना—पूर्ववत् । पृष्ठ १२६ पर देखें ।

लिवर फ्ल्यूक—इसे फिशियोला हिपेटिका भी कहते हैं। इस कृमि के भी नर-मादा एक ही में होते हैं और एक वर्ष में यह लगभग एक लाख अंडे देता है। यह पत्ती की तरह चपटा और १ इंच तक लम्बा होता है। घोड़े इस रोग से बचे रहते हैं।

कारण—इसके अंडे गोबर या गंदी जगहों में पैदा होते हैं। यह ताल के घोंघों में प्रवेश कर जाते हैं। तब इनका नाम स्पोरसिस्ट होता है। जब ये खूराक लेकर पुनः घोंघे के बाहर आ जाते हैं, तब सरकेरिया कहलाते हैं। यह जब पत्तियों में चिपटकर पशु के पेट में पहुँच जाते हैं तब इनका नाम लिवर फ्ल्यूक ह

लक्षण—पौष्टिक आहार पाने पर भी पशु क्षीण हो जाता है। गले में सूजन, गोबर पतला और मटमैले रंग का, आँख पीली होती है। पशु अन्त में पोंकने लगता है। गोबर का परीक्षण करके कीड़े व अन्डे देखे जा सकते हैं।

प्रतिरोधक चिकित्सा---जिस तालाब या चरागाह में यह बीमारी हो वहाँ तूतिया या कापरलोशन का हल्का घोल डालें। तालाव पटवा दें या ऐसे चरागाहों और तालाबों में पशुओं का आना - जाना बंद करवा दें। घोल का एक छिड़काव मानसून के पूर्व और दूसरा पानी बरसने के बाद हो जाना चाहिए ।

चिकित्सा सूत्र—अन्य कृमि-रोगों के समान।

चिकित्सा—कारबन टेटरा क्लोराइड दें। यह १ से ३ ड्राम भैंसों को और १ से २ ड्राम गाय-बैलों को देना चाहिये। यह दवा ४ से ८ औंस मैगसेल्फ का गाढ़ा घोल बनाकर दें। यदि पशु अधिक कमजोर है

और रोग पुराना है तो प्राय: उसको कोई इलाज लाभकर नहीं होता। शेष औषधियाँ जो सभी कृमि रोगों में सामान्य हैं देना चाहिए।

होम्यो०—अन्य कृमि रोगों के समान।

सावधानी व चारादाना—पृष्ठ १२६ के अनुसार।

नेजल ग्रेनूलोमा

यह नाक की बीमारी है। लिवर फ्ल्यूक की ही एक जाति के कृमि रक्त में हो जाते हैं। ये कृमि वैसे कोई अधिक नुकसान नहीं पहुँचाते किन्तु अन्डे बहुत नोकीले होते हैं, नाक आदि में घाव कर देते हैं। एक वर्ष से अधिक के सभी पशुओं के यह रोग हो सकता है।

लक्षण—उक्त अंडे शरीर के भीतरी भाग में क्षत करते रहते हैं। नाक बहने लगती है और अन्दर छोटी-छोटी फुंसियाँ बढ़कर नासिका-द्वार को बंद कर देती हैं।

चिकित्सा सूत्र---ऐसी औषधि दें कि कृमि रक्त में ही मर जायँ किन्तु ऐसी विषाक्त न हों कि पशु को हानि पहुँचावें।

प्रतिरोधक चिकित्सा—लिवर फ्ल्यूक के समान।

चिकित्सा---२ प्रतिशत टारटरएमेटिक का २० सी.सी. इंटरावेनस इंजेक्शन दें। एन्थोमैलिन २० सी. सी. इंटरामस्क्यूलर अत्यधिक लाभकारी है।

नोट—शेष सब लिवर फ्ल्यूक के समान व्यवहार करें।

मनिया फूटना (फ़ाइलेरिया हेमोरेजिका)

लक्षण—गाय, बैल, भैंस आदि सभी पशुओं के कंधा, गर्दन, पीठ

आदि में रक्तस्राव होता है। इसका कीड़ा सूत की तरह और खाल के नीचे होता है। परन्तु पशु को ज्वर नहीं होता।

चि० सू०—पेट साफ करने के लिए जुलाब और ऊपर घाव ठीक करने के लिए विषनाशक औषधि लगावें।

चिकित्सा—घाव को विषनाशक घोल से धोवें। फिर आयोडीन लगा दें। टारटर एमेटिक का इंजेक्शन लाभप्रद है।

अन्य कृमि एवं चर्मरोग

किलनी—पशुओं के प्रायः किलनी हो जाती हैं। यह पशुओं का खून चूसती हैं। किलनी थनों के पास लग जाती हैं और पशु दूध देना बंद कर देता है। पशु कमजोर हो जाता और बेचैन रहता है। इनसे बचाने के लिए पशु को खूब साफ-सुथरा रखना चाहिए।

चिकित्सा—एक भाग तम्बाकू, दो भाग साबुन, चलीस भाग पानी एक में उबालें और फिर एक भाग मिट्टी का तेल मिलाकर पशु के शरीर पर मालिश करें। पुनः साबुन से गर्म पानी डालकर स्नान करा दें। मिट्टी के तेल के स्थान पर फिनायल मिलाना अधिक लाभप्रद है। देवदारु तेल यदि मिल जाय तो वह बहुत लाभ करता है। गैमक्सीन से भी लाभ होता है।

पाव भर सरसों का तेल, दो तोला गंधक, गर्जन का तेल एक तोला, तारपीन का तेल एक तोला, कपूर एक तोला एक में पका लें और इससे तर कपड़े के लपेटने से भी लाभ होता है। इसी प्रकार एक भाग नीलाथोथा, दो भाग गंधक, वैसलीन अथवा कड़ुवा तेल मिलाकर लगाने से भी लाभ होता है।

होम्यो०—आर्सेनिका (Arsenic Al.) २००, १००० दें। शरीर दुबला व गंदा दिखे तो सल्फर २००, १००० का व्यवहार करें। यदि आर्सेनिक से लाभ न हो तो स्टेफिस्प्रिया (Staphisgria) ३०, २०० का व्यवहार करें। यदि पशु कमजोर हो और पतले दस्त आते हों तो चायना (China) २०, २०० दें।

नोट—पशु के शरीर पर खरहरा व ब्रुश करते रहना चाहिए।

जूँ (Lice)—यह तीन प्रकार के होते हैं : (१) छोटे मुँह, (२) लंबे मुँह और (३) काटनेवाला। इनमें प्रथम दो रक्त चूसते हैं और तीसरा शरीर के विभिन्न अंगों में पशु को काटकर परेशान करता है।

कारण—गंदगी के कारण। पशु का साफ रखें और रहने का स्थान भी साफ हो तो यह नहीं पैदा होने पाते।

लक्षण---इन्हें और इनके बच्चों को बालों में देखा जा सकता है। पशु दुबला हो जाता और ढीला व सुस्त रहता है।

चिकित्सा सूत्र---ऐसा उपचार करें कि ये मर जाँय और बाद में स्वच्छता रखें ताकि यह होने न पावें।

चिकित्सा---यदि जाड़ा न हो तो बड़े बाल काट दें। पुनः बिनौले का तेल और मिट्टी का तेल बराबर-बराबर मिलाकर पशु के शरीर पर ब्रुश से लगावें। इसी प्रकार ८ भाग जल, एक भाग पानी और दो भाग मिट्टी का तेल मिलाकर पशु के शरीर पर छिड़कने से लाभ होता है। स्प्रे का ढंग ठीक रहता है। किन्तु यह ढंग तब अच्छा रहता है जब पशु कम हों। अधिक होने पर गंधक व चूने के पानी में डुबकी लगवाना ज्यादा अच्छा रहता है। इसमें यह देखे रहना चाहिए कि यह जल पशु की आँखों और मुँह में न जाने पावे और सारे शरीर की साफ धुलाई भी हो जाय।

नोट—शेष किलनी के समान। होम्योपैथिक औषधियाँ भी उसी के समान प्रयोग करें।

कन्धा आना—यह भी एक चर्मरोग है जो एक डोरे के समान कीड़े से उत्पन्न होता है। इससे पशु को बड़ी तकलीफ होती है।

कारण—कंधे पर उक्त कीड़े के कारण घाव हो जाते हैं। पहले यह छोटा ही होता है पर मक्खियों के सतत आक्रमण होते रहने के कारण बढ़ता जाता है।

लक्षण—घाव होने पर पशुचिकित्सक को दिखा लेना चाहिये। वह सूक्ष्मदर्शक यंत्र के द्वारा परीक्षण करके बता सकता है कि यह कीड़ों द्वारा हुआ है या नहीं। यह घाव जाड़े में सूख जाते हैं और गर्मी में पुन: हो जाते हैं। मैदानी जानवरों के यह रोग यदि उचित उपचार न हुआ तो जीवन भर बना रहता है पर पहाड़ी क्षेत्रों में अपने आप ठीक हो जाता है।

चिकित्सा सूत्र—कीड़ों को मारनेवाली विषनाशक औषधि लगावें जिससे घाव भी भर सकें। यदि कीड़ों के कारण न होकर भार ढोने के कारण यह रोग हो तो विषनाशक घोल से धोकर मलहम लगावें।

चिकित्सा—१० से २० सी. सी. (पशु की आयु भार के अनुसार) मात्रा से एन्टीमोशन के इन्जेक्शन लगवावें। यह तीन दिन तक चालू रखें। टारटर एमेटिक का मलहम भी लगाव। बोरिक एसिड से सेंककर लिनिमेंट एमोनिया की मालिश या मेथिलेटेड स्प्रिट की मालिश करना भी लाभप्रद है। यह औषधियाँ दोनो प्रकार की सूजन में लाभप्रद हैं। हल्दी और चूने के पानी से फूले स्थान की मालिश करने से भी लाभ होता है। केवल सूजन होने पर मेंहदी के पत्ते को पीसकर लगावें। फूले स्थान को गर्म लोहे से दाग देने से भी लाभ होता है। तीसी का तेल गरम कर सूजन पर मलना चाहिये।

होम्यो०—आर्निका (Arnica) २०० के प्रयोग से कंधे की सूजन ठीक हो जाती है। यदि आर्निका से लाभ न हो तो साइलीसिया

का व्यवहार करें। यदि पक जाय तो घाव को साफकर उसकी भी उपयुक्त चिकित्सा करें।

चारादाना---पौष्टिक आहार दें। ऐसी चीज न दें जो मवाद पैदा करे।

सावधानी---जब तक पूर्ण लाभ न हो जाय उनसे काम न लें।

खुजली---यह भी कीटाणुओं के संसर्ग से होनेवाली बीमारी है। मनुष्यों के समान पशुओं को भी बड़ी कष्टसाध्य होती है।

कारण—इसका कारण एक सूक्ष्म कीटाणु है। वह जरा से संपर्क से ही फैलकर दूसरे जानवरों को भी ग्रसित करता है।

लक्षण---कभी-कभी पशु के नेत्र, गालों व गले में खुजली हो जाती है। कभी-कभी गले, कंधे, सींगों के पास, पिछले पुट्ठों पर और उनके पास होती है। इसी प्रकार तीसरे रूप में यह पूँछ की जड़ से प्रारंभ होकर नितंब की ओर बढ़ती है और जाँघ के अन्दर ही रहती है। रोग प्रारंभ होने के एक माह बाद लक्षण प्रकट होते हैं। पशु शरीर के उन अंगों को जहाँ खाज होता है घिसता और रगड़ता है। रगड़ने से जब बाल झड़ जाते हैं, तो चकत्ते स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। जब रोग ज्यादा बढ़ जाता है तो खुरंड बन जाते हैं। कुत्तों, भेड़ों, बकरियों और ऊँटों को यह रोग अधिक होता है।

चिकित्सा सूत्र---विषनाशक घोल से धोकर अच्छी तरह सफाई करने के बाद उक्त रोग के कीड़े मारनेवाली और घावों को ठीक करने वाली औषधि लगावें।

प्रतिरोधक चिकित्सा---पशु को साफ रखें और रोगी पशु के संपर्क से बचावें।

चिकित्सा---सर्वप्रथम पशु के बाल काट दें। पुनः परमेगनेट आफ पुटाश, गन्धक या साइलीन के घोल से पशु को नहलावें। फिनाइल के

पानी से स्नान कराना भी लाभप्रद है। गंधक आधपाव और चूना ८ छटाँक, ८-१० सेर पानी में पकाकर स्नान करावें तो भी फायदा होगा।

इसके पश्चात् १ औंस सल्फर, ४ ड्राम पुटास बाईकार्ब, १ औंस तारपीन का तेल और ८ औंस नारियल या सरसों का तेल मिलाकर नित्यप्रति लगावें। इसी प्रकार १ पाइन्ट पेट्रोलियम जेली, १ पौंड साफ्ट सोप, १ गैलन पानी में मिलाकर लगाने से लाभ होता है। इसके अभाव में १ पाइन्ट जल, १ ड्राम सौंफ का तेल, १ ड्राम साइलीन साफ्टसोप, १ औंस या ८ औंस लिनसीड आयल, १ औंस क्रियोज़ोट, २ औंस सल्फर मिलाकर लगावें। इसके अतिरिक्त कुत्तों को छोड़कर अन्य पशुओं के हेतु निम्न औषधियाँ रामबाण हैं—

१ औंस कारबोलिक एसिड, आठ औंस कड़ुवे तेल के साथ लगावें। कुत्तों के लिए कारबोलिक विष है। परन्तु ऊँटों के लिए औषधि विशेष लाभप्रद है ।

इसी प्रकार दूध व मिट्टी के तेल का घोल लगाने से, ८ माशे गंधक आमलासार, इतना ही कलमी शोरा, नित्य देने से चर्मरोग नहीं होने पाता। १ छटाँक नमक और १ छटाँक गंधक नित्य देने से भी यह रोग नहीं होता।

होम्यो०---रात्रि में खुजली बढ़े, बदबू करे और सूखी खुजली हो तो सोरिनम (Psorinum) २००, १००० देवें। जाड़े में खुजली होने पर यदि खुजलाने पर खून निकले तो पेट्रोलियम (Petrolium) २००, १००० देवें। पीले दाने हों, पीब निकलता हो तो मर्क्यूरियस (Merc-Sol) २००, १००० दें। यदि खुजली बहुत भयानक हो और दाने लाल हों या सूखी खुजली हो तो सल्फर (Sulpher) २००, १०००, लाभप्रद है। लसदार पीब, लाल घेरे में पीले दाने होने पर ग्रेफाइट्स (Graphites) १-१० बूँद का व्यवहार करें।

सावधानी---छूत के संपर्क से बचावें। सफाई रखें।

चारा-दाना—स्वच्छ जल और हल्का चारा-दाना दें।

दाद—यह एक संक्रामक चर्मरोग है। अधिकतर यह बछड़ों के होता है। यह वर्षों तक रहता है और दूसरे बछड़ों के स्थानमात्र के संपर्क से हो जाया करता है।

कारण—यह संपर्क से होनेवाला रोग है। बछड़ों को विशेष कर जब गंदी व छोटी जगहों में बंद करके रखा जाता है, तब उनके यह रोग हो जाता है।

लक्षण—यह रोग, चेहरे गर्दन और कानों पर अधिक होता है। विशेषतया गायों के बछड़े इससे अधिक पीड़ित रहते हैं। चकत्ते से पड़ जाते हैं और इनके चारो ओर दाने होते हैं। खुजलाने से पानी आता है।

चिकित्सा सूत्र व प्र० चि०---खुजली के समान। जहाँ दाद हो उस स्थान के बाल साफकर खुजली के रोग में बताये गये किसी एक घोल से वह स्थान धो दें। इसके बाद वह स्थान १ भाग साइलीन, ४ भाग कास्टर आयल या एसेटिक एसिड मिलाकर लगावें। इससे दाद जलकर समाप्त हो जायगा। फिर टिंचर आयोडीन लगावें। यदि दाद के चकत्ते अधिक बड़े हों तो १ भाग सल्फर, १ भाग कार्बन पोटास, १ भाग तारपीन का तेल और ८ भाग नारियल या सरसों का तेल मिलाकर लगावें तो लाभ होगा।

होम्यो०---वर्षा ऋतु में, फुंसियाँ होने पर रस्टाक्स (Rhustox) २००, १०००। काले चमड़े वाले पशु के छोटे आकार में दाद होने पर सिपिया (Sepia) २००, १००० दें। यदि इससे लाभ न हो और चकत्ते बड़े हो जायँ तो टेल्यूरियम (Tellurium) २००, १००० दें। इन सभी औषधियों के साथ सल्फर (Sulpher) २००, १००० देते रहना गुणकारी है।

———